ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—८३

प्राचीन भारत के प्रसाधन

लेखक

अत्रिदेव विद्यालङ्कार, एम-ए.

भूमिका लेखक

श्री रायकृष्णदास जी

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

समर्पण

डा० श्री मोतीचन्द्र जी

[सञ्चालक—प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई]

की सेवा में

प्राक्कथन

अलंकरण, मण्डनका प्रसाधन, सौन्दर्यके प्रस्फुटीकरण और अभिवर्धन का एक मुख्य उपाय है, बल्कि यों कहें कि सौन्दर्यकी समग्रता अलंकरणसे ही होती है। अलंकार शब्दका निर्वाचन ही यह है—हद तक पहुँचा देना। यह प्रवृत्ति नैसर्गिक है और केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं। स्वयं प्रकृति अपनेको समय-समयपर सजाती रहती है—वसन्तकी वासन्ती विभा और सावनका सावनी समा; वृक्षोंको हरीतिमा देकर ही वह सन्तुष्ट नहीं होती, समय-समयपर उन्हें फूलों-फलोंसे भी सजा देती है। सृजन-क्रममें भी इस प्रसाधनकी उपयोगिता है। भ्रमर-पुष्पोंके रंगोंसे आकर्षित होकर उसका रस लेते हुए पराग परिवहन करते हैं और उनके गर्भाधानके निमित्त बनते हैं। फिर यह सजावट अन्योन्य है :—

"पयसा कमलं कमलेन पयः
पयसा कमलेन विभाति सरः" ॥

कला-कृतियोंका लक्ष्य चर्वकको रस प्रदान करना है। फिर भी ऐसी कृतियोंके निर्माणमें एक अदा होनी चाहिए, तभी उनमें तासीर पैदा होती है, अन्यथा वे इतिवृत्तात्मक मात्र रह जाती हैं और यही अभिव्यक्तिवाली भिन्न-भिन्न युक्तियाँ अलंकार हैं, जिनसे रचना विशेष रसमयी होती है।

मानवमें प्रसाधनकी प्रवृत्ति स्वयंभू है, स्वाभाविक है। उसपर कृत्रि-मताका आरोप नहीं लगाया जा सकता। प्रकृतिने मानवको अधिकार दिया है कि सर्वत्रसे दोहन करके पूर्णता प्राप्त करे। वही अधिकार प्रसाधनमें भी विद्यमान है।

जब हम पाते हैं कि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रने चित्रकूट में सीतादेवीको मनःशिला और वन्य पत्र-पुष्पसे सिंगारा है, तो कौन कह

सकता है कि प्रसाधनका अर्थ आदर्शसे गिरावट है। लीला-पुरुषोत्तम भगवान् कृष्णचन्द्र जब गौ चरानेके लिए वनमें जाते तो अपना और अपने सखा-संघाती ग्वाल-बालोंका कितना प्रसाधन करते। वे सब विभिन्न रंग-मृत्तिकाओंके खौर तिलक और अंगराग, गुंजाके हार, वनमाला; मोरपंखों और किसलयोंसे सजे गोकुल लौटते। यह गोपवेश ऐसा होता, कि कालिदासका उपमान तो पीछे बना, पहिले तो यह अनुदिन गोपिकाओं का ही चित्त-चोर बनता रहा।

इस प्रकार हम पाते हैं कि प्रसाधन नारीका ही स्व नहीं नरका भी उसपर समान अधिकार है और अनादिकालसे वे इसका प्रयोग करते आ रहे हैं।

गुहावासी आदि मानव [जिसकी संस्कृति आज भी संसारके अनेक मानव समुदायोंमें चली आ रही है] के अपने प्रसाधन-प्रकार थे। यदि इसका प्रतिनिधि उदाहरण देखना हो तो दूर नहीं, संथाल परगना चले जाइए। आप पायेंगे कि वहाँका युवक-युवति समाज-प्रसाधनके मामलेमें अपने २०वीं सदीवाले बन्धुओंसे, सखा-सखियोंसे किसी प्रकार पिछड़ा नहीं।

प्रसाधन विरागीके लिए भी उतना ही आवश्यक है, जितना अनुरागीके लिए। आदर्शवादिताका दम भरनेवालोंकी यह धारणा भ्रान्त है कि प्रसाधन आदर्शसे च्युत करनेवाली चीज़ है। जो बाहरी प्रसाधनमें तत्पर न होगा वह भीतरी प्रसाधन कैसे कर पायेगा। हाँ, यह बात दूसरी है कि प्रसाधनमें अवस्था-भेद है, पात्र-भेद है।

कौन कह सकता है कि युग-पुरुष बापूमें प्रसाधन न था? किन्तु उस प्रसाधनकी अपनी एक कोटि थी। उसमें बनावट न थी, परन्तु उसमें उनका वह एक त्रिगुणातीतका मण्डन था, जैसे हिमालयका धवल धाराओंसे।

दूसरी ओर एक स्वयंवराके प्रसाधन हैं। जिस समय हंस-चित्रित

दुकूलधारिणी षोडश-विमण्डन-विमण्डिता दमयन्ती स्वयंवर प्रांगणमें प्रविष्ट हुई, मनुष्य नहीं, देवगण भी उसपर विमुग्ध हो गये।

जब यह निश्चित है कि मानव-जीवनके ताने-बानेमें प्रसाधन ओत-प्रोत है, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि साज-सज्जा अवांछनीय है। हाँ, उसकी यह आलोचना अवश्यमेव सत्य है कि जब प्रसाधन पद्धतिकी परंपरा हजारों वर्षसे चली आ रही है, तो उसीका तुल्यकालीन संस्करण न करके मात्र विदेशी प्रसाधनके अन्धानुयायी हम क्यों हो गये हैं।

इस दुरवस्थासे उबरनेका एक प्रमुख उपाय यह है कि हम अपने प्राचीन प्रसाधनका सिंहावलोकन करें। अत्रिदेवजी विद्यालंकार हमारे धन्यवाद एवं साधुवादके पात्र हैं कि उन्होंने ऐसे उपादेय, उपयोगी और अपेक्षाकृत उपेक्षित विषयको हाथमें लिया और उसका समुचित न्याय-पूर्वक प्रतिपादन किया।

इधर कई वर्षोंसे अत्रिदेवजी एक नये दृष्टिकोणसे प्राचीन संस्कृतिका विवेचन कर रहे हैं। वे प्राचीन संस्कृति या ज्ञानको आयुर्वेदकी दृष्टिसे देखते हैं। आयुर्वेद वाङ्मयकी ओर विद्वानोंकी दृष्टि नहीं गई थी, वे इसको केवल चिकित्सा तक ही सीमित समझते थे। परन्तु **'संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद'** लिखकर उन्होंने साहित्यपर नया प्रकाश डाला। इसी सिलसिलेमें यह प्रसाधन सम्बन्धी रचना है। इसमें आयुर्वेदमें उपलब्ध प्रसाधन-सामग्रीका विचार किया है, जो पूर्णतः नयी वस्तु है। अत्रिदेवजी इस प्रकारका महत्त्वपूर्ण कार्य करते आ रहे हैं, उनकी इसी लड़ीकी इस अभिनव मणिका का हम हार्दिक स्वागत करते हैं। भगवान् करे अत्रिदेवजी इस प्रकारकी सामग्री हमें बहुत दिनों तक देते रहें।

का० वि० वि०,
शुद्ध श्रावण शुक्ल ३, २०१५

कृष्णदास

कहने योग्य

'संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद' पुस्तक लिखते समय संस्कृत साहित्यके अध्ययनका एक अवसर मिला। इससे यह अनुभव हुआ कि इस साहित्य में प्रसाधन सामग्री प्रचुर मात्रामें है और यह सामग्री बहुत ही बुद्धिपूर्वक दी गई है। इसी प्रसंगमें आचार्य श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी लिखित पुस्तक 'प्राचीन भारतके कला-विलास' देखनेमें आई। इस पुस्तककी जहाँ अपनी रसमयता है, वहाँ पर बहुत-सी बातें ऐसी भी हैं जो प्रेरणा देती हैं कि इस विषय पर भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोणसे विचार करना और उसे सामने लाना आवश्यक है। आजतक यह विषय एक प्रकारसे अछूता ही है।

आदरणीय डाक्टर श्री मोतीचन्द्रजी [संचालक—प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई] ने 'प्राचीन भारतमें केश-प्रसाधन' पर बहुत ही महत्त्व-पूर्ण, मौलिक सचित्र लेख अंग्रेज़ीमें लिखा था। इस बातको लगभग अठारह साल हो गये। यह लेख ही इस श्रमकी नींवका पत्थर बना। बन्धु श्री रायआनन्दकृष्ण एम० ए० ने मुझे यह लेख पढ़नेको दिया। इससे पूर्व भी आदरणीय श्री डाक्टर वासुदेवशरणजी अग्रवालके सौजन्यसे श्री मोतीचन्द्रजीकी प्राचीन वेशभूषा पर लिखी पुस्तक देखनेको मिली थी।

इन दोनों कृतियोंको देखने पर मेरे मनमें सबसे पहली बात यह आई कि आयुर्वेद-साहित्यमें भी तो ये विषय थोड़ी-बहुत मात्रामें आते हैं। प्रसाधन सामग्री का उपयोग स्वास्थ्य-दृष्टिसे तो इसी साहित्यमें मिलता है;

---

१. 'संस्कृत-साहित्यमें आयुर्वेद' का प्रकाशन 'भारतीय ज्ञानपीठ' वाराणसीसे हुआ है।

वात्स्यायनके कामसूत्रके वचनोंका स्पष्टीकरण भी इसी साहित्यसे हो सकता है।

परन्तु आयुर्वेद-साहित्यको यह सौभाग्य नहीं मिला कि विद्वान् लोग इसकी भी छानबीन दूसरे भारतीय-साहित्यकी भाँति करें। भारतके बाहर यूरोपीय विद्वानोंने आयुर्वेद-साहित्यको प्रायः निरर्थक समझा, अथवा इसे चिकित्सा-प्रणाली तक ही सीमित माना। इधर बहुतसे भारतीय विद्वानों का ज्ञान भी यूरोपीय विद्वानोंके अध्ययन तथा अन्वेषणके ऊपर आधारित रहता है, उससे आगे जानेका उनमें साहस नहीं, श्रम नहीं। इसीसे प्राचीन वेश-भूषाके उल्लेखोंमें आयुर्वेद-साहित्यमें वर्णित वस्त्रोंका, उनके बनानेके साधनोंका, सूत्रोंका, उनके नामोंका उल्लेख हमको नहीं मिलता।[1]

इसीसे मैंने यह निश्चय किया कि प्रसाधन सम्बन्धी सामग्रीको आयुर्वेद की दृष्टिसे उपस्थित करूँ। इसमें ऐतिहासिक—विशेष करके बौद्ध-साहित्यसे विषयको स्पष्ट करनेमें बहुत सहायता मिली। इसका कारण यह है कि आयुर्वेदके आधारभूत ग्रन्थ चरक, सुश्रुत और अष्टांगसंग्रहके समय यह संस्कृति स्थिर बन गई थी। इसीसे उन्होंने प्रसाधन-सामग्रीको स्वास्थ्यकी दृष्टिसे आँका और इसके महत्वको समझा। इससे मैं समझ सका कि

---

१. अष्टांग संग्रहके निम्न श्लोककी बारीकी, उसका बढ़िया स्पष्टीकरण मुझे श्री डाक्टर मोतीचन्द्रजीने ही बताया था जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ—

"सजलवि विधलेखाक्षौमवस्त्रावृत्तांगैः"

—चि० मदात्यय

इसमें सोने-चाँदीके तारोंसे बने चित्रवाले बारीक-झीने वस्त्रोंका उल्लेख है, जिनके लिए कालिदासने कुमारसम्भवमें 'कलहंससे चिह्नित' शब्द प्रयोग किया है [कुमार० ५।६७]।

आयुर्वेद ही एक ऐसा विषय है जो कि प्रसाधन सम्बन्धी अध्ययनके लिए सबसे अधिक उपयोगी है, उसीकी सहायतासे इसपर लिखा जा सकता है।

मैं इस विषयमें रुचि रखता था, किन्तु प्रसाधनके ऊपर स्वतन्त्र कोई साहित्य मेरे देखनेमें नहीं आ रहा था। काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके भारती महाविद्यालयके आचार्य श्रीराजबलीजी पाण्डेय, एवं अध्यक्ष डाक्टर श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल तथा हिन्दी विभागके अध्यक्ष श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदीकी समय-समयपर मिली सहायताने मेरे मार्गको सरल और प्रशस्त बनाया। उनसे मिली प्रेरणा तथा आशावर्धक सहयोगके भरोसे ही मैं इसको पूरा कर सका, इसके लिये मैं इन महानुभावोंका कृतज्ञ हूँ।

पुस्तकमें दिये गये चित्रोंमें प्रसाधिका और प्रसाधनके दो चित्र काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके भारत कला-भवनके चित्रोंकी प्रतिकृति हैं। इन प्रतिकृतियोंको कला-भवनके मान्य संचालक आदरणीय श्री रायकृष्णदासजी ने बहुत ही उदारताके साथ प्रदान किया, इतना ही नहीं, मेरी प्रार्थनापर इसकी भूमिका लिखकर भी मुझे उपकृत किया, इसके लिए मैं रायसाहबका बहुत आभारी हूँ।

पुस्तकमें जहाँ कहीं विषयके उद्धरणकी पुनरुक्ति है वह उद्धरण प्रसंगको स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे है। पृष्ठका उद्धरण देनेकी अपेक्षा विषयको वहीं स्पष्ट करना मैंने उचित समझा। ऐसा भी हुआ है कि जो विषय एक स्थानपर संक्षेपमें आया है, वह दूसरे स्थानपर विस्तारसे वर्णित है।[1]

---

१. इस प्रकारसे विषयको दोहरानेमें अत्रिपुत्रने कोई दोष नहीं माना—

"तद्व्यक्तिव्यवसायार्थं द्विरुक्तं तन्न गर्ह्यते"

—चरक० नि० १।४१

ऐसे वचन वस्तुको स्पष्ट करनेके लिए ही होते हैं, इनको पुनरुक्ति नहीं समझना चाहिए।

पुस्तकके आवरणका चित्र भुवनेश्वरके मन्दिरमें उत्कीर्ण प्रस्तर चित्रकी प्रतिलिपि है। यह चित्र ग्यारहवीं-बारहवीं शतीका है। इसमें स्त्री हाथमें उन्नतोदर दर्पण थामकर प्रसाधन कर रही है, उन्नतोदर दर्पणमें यह विशेषता है कि इससे चेहरेकी सूक्ष्म रचना, बारीक निशान, स्पष्ट दीख जाते हैं और प्रसाधन ठीक प्रकारसे हो सकता है।

जिस प्रकार कि एक रथ नाना अंगोंके सहयोगसे बनता है; और जिस प्रकारसे एक घर नाना प्रकारकी वस्तुओंको इधर-उधरसे संग्रह करके बनाया जाता है; उसी प्रकार पुस्तकका यह रूप भी अनेक विद्वानोंकी सहायता और अनेक ग्रन्थोंके संयोगका फल है। इस क्षेत्रमें अभी आगे भी गुंजायश है। तब तक इस दिशामें शायद यह पहला कार्य माना जायेगा। इस सम्बन्धमें जो भी सुझाव या विचार मिलेंगे, उनका हृदयके साथ स्वागत करूँगा और दूसरे संस्करणमें उनको कार्यान्वित करनेका भी यत्न करूँगा।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
१५ अगस्त, १९५८

अत्रिदेव

विषय-सूची

प्राचीन भारतीय सभ्यताके ऐतिहासिक स्थल हड़प्पा में जो 'शृंगारदान' मिला है, उससे तत्कालीन मनुष्योंकी प्रसाधन रुचिका परिचय मिलता है। इस शृंगारदानके साथमें छेद करनेकी वस्तु, कानसे मैल निकालनेकी कनखोदनी और छोटी चिमटी भी मिली है। ये वस्तुएँ उसी प्रकारकी हैं जैसी उर, किस और खफज़ासे मिली हैं। दोनोंमें एक ही प्रकारकी विशेषता ली हुई सिरोंकी बनावट है। प्रसाधनका डिब्बा हाथीदाँतका, धातु, मिट्टी और पत्थरका होता था। इन छोटे सुन्दर डिब्बोंमें चार खाने होते थे, जिनमें मूल्यवान सुगन्ध या शृङ्गारकी वस्तुएँ रक्खी जाती थी। स्पष्ट है कि मोंहेंजोदड़ोंकी स्त्रियाँ नेत्रोंमें अंजन, मुखपर लेप तथा अन्यान्य शृङ्गारिक वस्तुओंका उपयोग करती थीं। ऐसे भी छोटे भरे शंख मिले हैं जिनमें गालोंपर लगानेका लाल और पीला रंग, हरी मिट्टीका टुकड़ा, मुखपर लगानेका श्वेतरंग तथा काले रंगकी प्रसाधन सामग्री है। इनसे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतकी स्त्रियाँ शृङ्गार और प्रसाधनको पसन्द करती थीं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि कन्ह-दड़ोंमें मिली वस्तुओंसे पता चलता है कि उस समय लिपस्टिक, सीसकके समास [लैड़ कार्बनेट], मुखपर लगाये जानेवाले लेप, आँखोंके लिए मरहम और बालोंको धोनेकी वस्तुओंका भी उपयोग होता था। तांबे और कांसेकी बनी ऐसी सलाइयाँ मिली हैं, जिनके किनारे गोल और पालिश किये हुए हैं, जो सम्भवतः प्रसाधनके काममें आती थी। प्रसाधनके निमित्त ऐसी छोटी मेजें भी मिली हैं, जिनसे प्रतीत होता है ये विशेषरूपमें स्त्रियोंके लिये बनाई गई थीं। शृङ्गारकी एक ऐसी मेज मिली है जिसमें अण्डाकार कांसेका बना शीशा लगा हुआ है। हाथीदाँत के बने भिन्न-भिन्न आकारके कंघे भी प्राप्त हुए हैं। इनमेंसे कुछ कंघे सम्भवतः बालोंमें फँसे हुए थे। कांसेके बने विभिन्न प्रकारके उस्तरे मिले हैं जो मनुष्योंके प्रसाधनमें काम आते थे।

—भारतीय विद्याभवन—बम्बईसे प्रकाशित वैदिक एज० पृष्ठ १७५

प्रसाधिका

प्रसाधन की आवश्यकता

●

पहला अध्याय

सृष्टि रचनाके प्रारम्भसे ही सभी देशों तथा प्रायः समस्त युगोंके मानवोंमें प्रसाधनकी प्रवृत्ति पाई जाती है। एक त्यागी महात्मा जिसे दुनियासे कोई मतलब नहीं और जिसकी दैनिक आवश्यकताएँ बहुत ही थोड़ी हैं; वह भी अपने शरीरकी ओरसे निरपेक्ष नहीं। वह नित्यप्रति स्नान करता है, जटा-जूटको स्वच्छ करता है और उनको एक क्रम-विशेष से बाँधता है। अपढ़ और अविकसित व्यक्ति जिसका सारा जीवन शिकारमें जाता है; वह भी शिकारमें मिली वस्तुओंसे अपने शरीरको अलंकृत करता है।[1] नागरिक जीवनसे दूर जंगलमें रहनेवाली कन्याएँ वनमें प्राप्त होनेवाली वस्तुओंसे शरीरको सजाती हैं। कविगुरु कालिदासके काव्य और नाटक की पार्वती तथा शकुन्तलाका प्रसाधन वनलता और वनपल्लवोंसे ही होता था। शकुन्तलाने वृक्षका वल्कल पहिने ही सम्राट् दुष्यन्तके चित्तको आकृष्ट कर लिया था।[2]

---

१ "आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तलभारेण केशरिणमिव गज-मदमलिनीकृतेन केशरकलापेनोपनेतम्;...........भुजगफणामणेरापाटलै-रंशुभिरालोहितीकृतेन पर्णशयनाभ्यासलग्नपल्लवरागेणेव वामपार्श्वेन विराजमानम्, अचिरहतगजकपोलगृहीतेन सप्तच्छदपरिमलवाहिना कृष्णागुरुपङ्केनेव सुरभिणा मदेन कृताङ्गरागम्"...कादम्बरी, कथामुख—शवरसेनाधिपतिवर्णन।

२ क. क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणीमाङ्गल्यमाविष्कृतम्।
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्॥—शाकुन्तल ४।५

ख. कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेशरम्॥
—शाकुन्तल ६।१८

ग. इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥—शाकुन्तल। १।१६

इसी प्राकृतिक रुचिके कारण मनुष्यका ध्यान सर्वप्रथम प्रकृतिप्रदत्त सुलभ प्रसाधनों पर गया। उसने पैरों पर लाखका रस और आँखोंमें अंजन लगाना प्रारम्भ किया। शरीरको भिन्न-भिन्न रंगोंसे चित्रित किया। रंगोंके लिए उसने विभिन्न रंगोंके पत्तोंका उपयोग शरीरके भिन्न-भिन्न अंगोंपर [यथा—कपोलों, स्तनों और वक्ष पर] करना प्रारम्भ किया। [इसीसे संस्कृतमें पत्रभंग-शब्द चला। भंग शब्द भित्ति-रचना-शृंगार को सूचित करता है।[1]]। कपोलों पर लोध्ररज लगाना प्रारम्भ किया [विशदं कपोलभुवि लोध्ररजः—माघ० ६।४६]। मनुष्यने इन सब वस्तुओंका उपयोग केवल इसलिए किया कि उसे इसमें आनन्द एवं सुखकी प्राप्ति होती थी। यह सुख कुछ तो अपने आप देखनेमें तथा कुछ दूसरोंसे अनुश्रुति सुनने पर होता था। विशेषतः स्त्रियोंमें दूसरोंसे अपनी प्रशंसा सुनने की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति पायी जाती है।

'स्त्रीणां प्रियप्रणय एव हि भूरि भूषा'—कुट्टिनीमतम्; टिप्पणी।

स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः—कुमार...७।२२

प्रसाधन प्रारम्भमें प्राकृतिक वस्तुओंसे प्रारम्भ हुआ—जैसे, मनःशिला,

---

१. कस्याश्चिन्मुखमनुधौतपत्रलेखम् —माघ ८।५६

कामिनीकुचपत्रभंगेषु वक्रता—कादम्बरी—तारापीड़वर्णन।

अच्छश्रमजललुलितगोरोचना तिलकपत्रभंगम्—कादम्बरी तारापीड़ वर्णन।

चरणालक्तकहंसमिथुनम् —कादम्बरी।

सालक्तकपदकमलविन्यासैः पल्लवमयमिव क्षितितलम्—कादम्बरी

नवमञ्जनं नयनपङ्कजयोः —माघ ६।४६।

सिन्दूरैः कृतरुच्यः सहेमकक्ष्याः —किराता० ७।८।

कज्जलमलिनाश्रुवारिणामिश्रम् —कुट्टिनीमतम् २६८।

सिन्दूर, हरताल, अञ्जन-सुरमा आदि[1]। कालान्तरमें इनमें अनेक सुधार हुए। उदाहरणके लिए शरीरकी चिकनाहटको दूर करनेके लिए लोध्रचूर्ण का उपयोग होता था [**तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलाम्—कुमार० ७।९**] शिरके बालोंमें महुएकी माला दूबके सूत्रमें गूँथकर बाँधी जाती थी। [**दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना—कुमार० ७।१४**]। इसी प्रकार पहिले आँखमें अञ्जन लगानेके लिए अंगुली या अस्थिकी शलाकाका उपयोग हुआ और आगे चलकर स्वर्ण, रजत, ताम्रकी धातु शलाकाएँ बनीं।

प्रसाधनसे शृङ्गार या सौन्दर्यवृद्धि पहले मुख्य उद्देश्य रही, किन्तु बादमें इसके साथ ही शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्यकी दृष्टि भी सम्मिलित हो गई। उदाहरणार्थ आँखोंमें अञ्जन लगानेसे सौन्दर्यकी तो वृद्धि होती ही है साथ ही नेत्रकी ज्योतिको भी लाभ पहुँचता है। जिस प्रकार स्वर्ण आदि धातुओं तथा मणि आदिसे बनी वस्तुओंकी सफाई तैल और वस्त्रसे साफ करके होती है, उसी प्रकार आँखोंकी सफाई अञ्जनसे होती है। इसे नित्य-प्रति आँखोंमें लगाना चाहिए[2]; यह दिनचर्याका एक अङ्ग है। नेत्रमें अञ्जन करनेसे धूपकी गरमी, पलकोंपर सूक्ष्म जन्तुओंसे उत्पन्न रोग और पलकोंका गिरना नहीं होता। बौद्ध भिक्षुओंके लिए अञ्जनका उपयोग

---

१. **तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्ते प्रसाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य।**
न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या कालाञ्जनं मंगलमित्युपात्तम्॥
—कुमार० ७।२०

नलिनं मलिनं विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे।
अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते विदधाते रुचिगर्वदुर्विधम्॥—नैषध० २।२३

२. **सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्॥-चरक० सूत्र० ५।१५**
एवं नेत्रेषु मर्त्यानामञ्जनाश्च्योतनादिभिः।
दृष्टिर्निराकुला भाति निर्मले नभसीन्दुवत्॥ -चरक० सूत्र० ५।२०

बताया गया है[1]। अञ्जन प्रसाधनका एक अङ्ग होनेके साथ ही शरीरके स्वास्थ्यके लिए आवश्यक रहा है। सम्भवतः पहले प्रसाधन मुख्य उद्देश्य रहा हो और पीछे इसमें स्वास्थ्यकी दृष्टिका भी समावेश हो गया।

प्रसाधनके लिए भिन्न-भिन्न रंगोंका चुनाव किया जाता था। कानोंके लिए शिरीष कुसुमके फूलका भी उपयोग मिलता है और जौके प्ररोहका भी [कुमार० ७।१७]। इनमें लम्बन—लटकना रहता है। सौन्दर्यके लिए ये कानोंमें झूलते रहते थे। ओठमें तथा हाथकी हथेली और पैरके तलुवोंके लिए लाल रङ्ग चुना गया है। ओठोंपर लाल रंग बैठे, इसलिए मोमका उपयोग होता था। पैरोंकी लालिमाके लिए आलक्तक—महावरका उपयोग होता था; [हाथों पर आजकल मेंहदीका उपयोग होता है। प्राचीनकाल में किसका उपयोग था, यह पता नहीं। सम्भवतः लाक्षारसका ही उपयोग होता होगा]। रङ्ग चुननेमें भी शरीरके सौन्दर्य-प्रसाधनके साथ स्वास्थ्यका भी ध्यान रखा जाता था। बालोंके लिए काले अगरुका धुआँ दिया जाता था। [अगरुसुरभिधूपमामोदितं केशपाशम्—ऋतु० ५।१२]

मुखकी कान्तिके लिए हल्दी या मनःशिलाका उपयोग होता था। शरीरके पसीनेकी दुर्गन्धिको दूर करनेके लिए चन्दन, अगरु, कस्तूरीका लेप होता था। [कालागरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्गयः—ऋतु० २।२२]

प्रसाधनमें कई बार विरोधी रंगोंका भी मिश्रण होता था। यथा-काले बालोंमें श्वेत मालतीका फूल [१-केशान्नितान्तघननीलविकुञ्चिताग्रानापूरयन्ति वनिता नवमालतीभिः—ऋतु० ३।१९; २-अलके बालकुन्दानु-

---

१. भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अञ्जनकी [जैसे कि]—काला अञ्जन, रसाञ्जन; स्रोताञ्जन, गेरू, काजल। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कि अञ्जनदानीकी; भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आँजनेकी शलाकाकी। —विनयपिटक, महावग्ग- ६-१।११

विद्धम्–उत्तर मेघ २]। आँखोंमें लगाया गया काजल आँखके श्वेत भागकी श्वेतिमाको और भी बढ़ा देता है।

सैरन्ध्री

प्रसाधन या शृंगार करना एक कला रही है। महाभारतमें इस कार्यमें कुशल स्त्रीके लिए सैरन्ध्री नाम दिया है [**सैरन्ध्री-शिल्पकारिका—अमर-कोश**]। द्रौपदीने विराटभवनमें प्रवेशके समय अपना नाम सैरन्ध्री ही दिया है और उसके ये कार्य बताये हैं—"भारत ! इस जगत्में बहुत-सी स्त्रियाँ हैं; जिनका दूसरोंके घरोंमें पालन होता है, और जो शिल्प कर्मके द्वारा जीवन निर्वाह करती हैं। वे अपने सदाचारसे स्वतः सुरक्षित रहती हैं; ऐसी स्त्रियोंको सैरन्ध्री कहते हैं। इसलिए मैं अपनेको सैरन्ध्री कहकर परिचय दूँगी। बालोंकी रचना—वेणी बाँधनेमें मैं बहुत कुशल हूँ। मैं कह दूँगी कि युधिष्ठिरके घरमें महारानी द्रौपदीकी परिचारिका बनकर रही हूँ[1]।" कादम्बरीमें पत्रलेखा, तरलिका आदि स्त्रियाँ इसी प्रसाधन कार्य तथा अन्य शृंगार कार्यके लिए पात्र रूपमें वर्णित हैं। ये स्त्रियाँ ताम्बूल पिटारी को रखनेके साथ प्रसाधन सामग्रीको भी साथमें रखती थीं। [**गृहीतविविधकुसुमताम्बूलांगरागा पटवासचूर्णया तरलिकाग्रगण्यमाना—कादम्बरी**]। वात्स्यायन कामसूत्रमें शय्याके पास ताम्बूलके साथ 'सिक्थ-

---

१. सैरन्ध्र्यो रक्षिता लोके भुजिष्याः सन्ति भारत।
नैवमन्या स्त्रियो यान्ति इति लोकस्य निश्चयः॥
साहं ब्रुवाणा सैरन्ध्री कुशला केशकर्मणि।
युधिष्ठिरस्य गेहे वै द्रौपद्याः परिचारिका।
उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टा राज्ञा च भारत॥

—महाभारत विराट ३।१८।१९

करण्डिका' प्रसाधनकी पेटी भी रखनेका उल्लेख मिलता है।[1] जिस प्रकार 'संवाहन' एक कला थी उसी प्रकार केशरचना की भी चौंसठ कलाओंमें गणना है। [**उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्**—कामसूत्र— संवाहन कलाका उल्लेख मृच्छकटिकमें वसन्तसेनाने किया है; **साधु कला शिक्षिता आर्येण**]। 'ताम्बूलकरङ्कवाहिनी' स्त्रियाँ ही नायिका या स्वामिनीके प्रसाधनका ध्यान रखती थीं। [**ताम्बूलकरङ्कवाहिनी इति कृत्वा मया प्रेषिता—कादम्बरी-पत्रलेखा वर्णन**]। पुरुषोंका प्रसाधन भी मुख्यतः ये ही करती थीं। इसीसे विलासवतीने पत्रलेखाको चन्द्रापीड़के पास भेजा था। कुट्टिनीमतम् में ताम्बूलकरङ्कवाहिनीका नाम आता है [**प्रथमवयस्त्वं भजता ताम्बूलकरङ्कवाहिनानुगतः—६७**]।

प्रसाधनमें विष प्रयोग

प्रसाधन का कार्य विशेष महत्त्व का था। इसके द्वारा विष प्रयोगकी सम्भावना बहुत अधिक थी, इसीलिए इस कार्यके निमित्त अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति ही नियुक्त होते थे [**सुहृदिव सर्वविश्रम्भेषु अभ्यन्तरी करणीया—कादम्बरी**]। प्रसाधन द्रव्योंमें विषका प्रयोग अनेक प्रकारसे होता था। **उत्सादन**—उबटन; परिषेक—स्नानके पानीमें; अनुलेपन—चन्दन आदिके लेपमें, मालामें, वस्त्रोंमें, शय्यामें, आभूषणोंमें, जूतोंमें, आसनोंमें, अंजन, नस्य, और धूमवर्त्तियोंमें शत्रु लोग विष प्रयोग करते थे। इसलिए ठीक प्रकारसे

---

१. "**शयनीयशिरोभागे न्यस्तकूर्चे शुचि शुभे।
कृतेष्टदेवतायोगो यायाच्छयनमात्मवान्॥**

वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकसौगन्धिक-पुटिका मातुलुंगस्त्वचा ताम्बूलानि च स्युः॥" —कामसूत्र १।८।

परीक्षा करके इनका उपयोग करना चाहिए।[1] इसलिए प्रसाधन द्रव्योंको उत्तरदायित्व पूर्ण विश्वासी व्यक्तिको सौंपा जाता था। इसी विश्वस्त व्यक्तिके लिए कादम्बरीमें 'ताम्बूलकरङ्कवाहिनी' एक विशेषण आया है। वास्तवमें इनका कार्य अपने स्वामीका प्रसाधन करना था।

स्त्रियाँ स्वयं भी प्रसाधन करती थीं। नन्दकी पत्नीके स्वतः प्रसाधन करनेका उल्लेख अश्वघोषने किया है—

दत्त्वाऽथ सा दर्पणमस्य हस्ते ममाग्रतो धारय तावदेनम्।
विशेषकं यावदहं करोमीत्युवाच कान्तं स च तं बभार॥
भर्त्तुस्ततः श्मश्रुनिरीक्षमाणा विशेषकं सापि चकार तादृक्।
निश्वासवातेन च दर्पणस्य चिकित्सयित्वा निजघान नन्दः॥
सा तेन चेष्टा ललितेन भर्तुः शाठ्येन चान्तर्मनसा जहास।
भवेच्च रुष्टा किल नाम तस्मै ललाटजिह्मां भ्रूकुटिं चकार॥
चिक्षेप कर्णोत्पलमस्य चांसे करेण सव्येन मदालसेन।
पत्राङ्गुलिं चार्धनिमीलिताक्षे वक्त्रेऽस्य तामेव विनिर्दुधाव॥
—सौन्द० ४।१३-१६।

नन्दकी पत्नीने अपने प्रियतमके हाथोंमें दर्पण देकर कहा—'जब तक मैं अपना प्रसाधन करती हूँ तब तक मेरे सामने इसे पकड़े रहो।' नन्दने उस दर्पणको पकड़ लिया। स्वामीकी मूँछोंको देखकर उसने भी अपने चेहरे पर वैसी मूँछे बनाई। नन्दने जान-बूझकर अपने प्रश्वासकी वायुसे

---

१. ईश्वराणां वसुमतां विशेषेण तु भूभुजां प्रायेण मित्रेभ्योऽप्यमित्रा भूयांसो भवन्ति। —संग्रहः सूत्र अ० ५।

उत्सादने कषाये च परिषेकेऽनुलेपने।
स्रक्षु वस्त्रेषु शय्यासु कवचाभरणेषु च॥
पादुकापाठपीठेषु पृष्ठेषु गजवाजिनाम्।
विषजुष्टेषु चान्येषु तस्य धूमांजनादिषु॥-सुश्रुत०कल्प० १।२५-२६

दर्पणको मैला कर दिया। स्वामीकी इस धूर्त्तताको समझकर मन-ही-मन हँसते हुए उसने उसको दिखानेके लिए अपनी भौंहोंको जरा टेढ़ा किया। मदसे अलसाये हुए बायें हाथसे उसने नन्दके कन्धे पर अपने कानका नीला कमल फेंककर मारा और आधी मिंची आँखोंवाले नन्दके मुखपर वही अंगराग पोत दिया।

ऐसा प्रसाधन वास्तवमें राजकीय प्रासादों तथा संभ्रान्त परिवारोंमें ही होता था। प्रसाधन, वस्त्रपरिधान आदि कार्योंके लिए कुशल व्यक्ति रखे जाते थे, इनका काम मुख्यतः स्वामी या स्वामिनीका शृंगार करना होता था। [**स्नापक संवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्मदास्याः कुर्युः;—कौटिल्य-अर्थ १।२१।१८**]। यह कार्य जीवन तथा शोभा दोनों दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण होनेके कारण विश्वसनीय और दक्ष व्यक्तियोंको ही सौंपा जाता था। प्रसाधन समस्त मानवको प्रिय है। इसका सम्बन्ध मन—आत्माके साथ रहनेसे यह शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री-पुरुष सभीमें समान रूपसे है। इसलिए आजकी भाँति प्राग् ऐतिहासिक कालमें तथा उसके पश्चात् युग-युगान्तरमें भी इसके प्रमाण मिलते हैं।[१] इससे स्पष्ट है कि प्रसाधन कार्यमें मनुष्यकी रुचि जन्मजात है। जिस प्रकार काम नित्य है; [**कामस्य नित्यत्वाच्च—कामसूत्र**] उसी प्रकार प्रसाधन प्रवृत्ति भी नित्य—शाश्वत रही है।

---

१. प्राचीन खुदाईमें सुरमा, सुरमेदानी, सलाई आदि मिली हैं; डा० मोतीचन्दका लेख।

दूसरा अध्याय

प्रसाधनके रूप

प्रसाधनका मुख्य उद्देश्य—अभिप्राय सुवेश एवं सुसंस्कृत साज-सज्जासे है। पालि ग्रन्थोंमें इसके लिए माला-गन्ध-विलेपन-धारण-मण्डन-विभूषण शब्द आये हैं। मनुष्यको आकर्षक और सुन्दर बनानेके सभी साधन-शैलियाँ प्रसाधन शब्दके अन्तर्गत आ जाती हैं। पालि-ग्रन्थ ब्रह्मजाल सुत्तके अनुसार परिवेषके अन्तर्गत निम्न वस्तुएँ आती हैं :—

१. उत्सादन—सुगन्धित वस्तुओंका शरीरपर लेप करना।
२. परिमर्दन—मलना, दबाना (चापी करना[1])।
३. स्नान—सभी अंग-प्रत्यंगोंको धोना, मार्जन करना।
४. संवाहन—शरीरकी मालिश।
५. आदर्श—दर्पणमें मुख देखना।
६. अंजन—आँखोंमें सुरमा लगाना।
७. माल्य विलेपन—माला धारण करना, सुगन्ध लगाना।
८. मुख चूर्णक—चूर्ण (पाउडर) लगाना।
९. मुखालेपन—मुखपर सुगन्धित लेप लगाना।
१०. हस्त बन्ध—हाथोंमें कंकण पहिनना।
११. शिखा बन्धन—बालोंको सँवारना, कंघी करना।

---

१. परिमर्दन और संवाहनमें भेद इतना है कि परिमर्दनमें शरीरको जोरसे दबाया जाता है [पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च—सुश्रुत चि० अ० २४।४३]; संवाहनमें—शरीर को हाथोंसे धीरे-धीरे एक विशेष प्रकारसे दबाया जाता है; इसे आजकल मुट्ठी भरना या चापी करना कहते हैं।

१२. दण्डक—छड़ी लेना ।
१३. नालिका—बन्दूककी भाँति लम्बी नलीका अस्त्र ।
१४. खड्ग—तलवार ।
१५. छत्र—छाता लगाना ।
१६. उपानह—जूता पहनना ।
१७. उष्णीष—पगड़ी बाँधना ।
१८. मणि—रत्न धारण करना ।
१९. बालव्यंजन—पंखा या चँवर ।
२०. उदातानी-दिग्दर्शनी—सोने या चाँदीके तारोंकी बनी कलाबत्तूके काम वाला परिधान पहिनना [सम्भवतः अंगरखा है, जिसे सुश्रुतमें वारबाण कहा है—सु० चि० २४।७४ ।]

प्रसाधनमें नाना प्रकारकी सुगन्धियाँ, केशरञ्जन, माला, फूल, सुगन्ध-द्रव्य, सुगन्धित तेल, अंजन, अनुलेपन, आलक्तक आदि वस्तुओंका समावेश होता है ।[1]

---

१. चरक संहितामें निम्न कार्य बताये हैं—

"अत ऊर्ध्वं शरीरस्य कार्यमभ्यञ्जनादिकम् ।
स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्य गुणतः संप्रवक्ष्यते ॥
—चरक० सू० अ० ५।१४ ।

अंजन; धूमपान, तैलका नस्य; दन्तधावन [दातुन], जिह्वानिर्लेखन; मुखशोधन—ताम्बूल; तैल गण्डूष; सिरपर तैल लगाना; तैलाभ्यंग; पैरोंपर तैल मालिश; स्नान, निर्मल वस्त्र धारण, गन्ध-माल्यका सेवन, रत्नधारण, पैरोंका बार-बार धोना; बालोंका कटवाना; नख कटवाना; जूता पहनना; छाता धारण करना, दण्ड धारण करना—इतने कार्य प्रतिदिन करने आवश्यक हैं ।

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा ।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्वहितो भवेत् ॥-चरक० सू० अ० ५।१०३ ।

सुश्रुत संहिताके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिको शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए निम्न कार्य करने चाहिए:—

१. दन्तधावन, २. आँख और मुखका प्रक्षालन, ३. अंजन लगाना, ४. पान खाना, ५. शिरपर तैलकी मालिश, ६. परिषेक, ७. बालोंमें कंघी करना, ८. तेलकी मालिश, ९. व्यायाम, १०. उद्वर्त्तन [मसाज़], ११. उत्सादन [सुगन्धित लेपसे शरीरको मलना], १२. उद्घर्षण [खुरदरी वस्तुसे शरीरको रगड़ना] १३. स्नान, १४. अनुलेपन [सुगन्धित लेप लगाना] १५. रत्न, फूल और धुले साफ़ वस्त्र पहिनना, १६. आलेप—शरीरपर सुगन्धित लेप लगाना, १७. जूता पहिनना; १८. बाल कटवाना, हजामत करना, नखों पर पालिश या रंगना, १९. वारबाण [अंगरखा] धारण करना, २०. पगड़ी धारण करना, २१. दण्ड धारण करना, २२. छाता लगाना, २३. बाल व्यजन—पंखा या चौरी रखना, २४. संवाहन— शरीरको धीरे-धीरे दबाना [श्री गिरजाप्रसन्न मजूमदारने संवाहनका अर्थ शैम्पू किया है]।

शुक्रनीतिमें स्पष्ट कहा है कि मनुष्यको प्रतिदिन स्नान करना चाहिए, सुगन्धका लेप और सुवेश धारण करना चाहिए। मनुष्यका वेश लोगोंकी आँखोंमें चुभनेवाला नहीं होना चाहिए [३।६–७]। वस्त्रोंका सम्यक् परिधान, आभूषणोंका पहिनना, माला धारण करना, ताम्बूल लगाना कलाके अन्तर्गत कहा है [४।३।१३५-१३७-१९८]।

अग्निपुराणमें शरीरकी दुर्गन्धिको दूर करनेके लिए आठ नुस्खे दिये हैं; जिनका प्रयोग करके दूसरेको प्रसन्न किया जा सकता है। धोनेसे, माला धारण करनेसे; शरीरको फूलोंसे सजाकर; गरमकर; सुगन्धित धूम वर्त्तीसे; सुगन्ध और इत्र आदि लगाकर शरीरकी दुर्गन्धिको दूर कर सकते है। शरीरको धोने तथा स्नानके लिए सुगन्धित जलका उपयोग बताया गया है। इसके लिए पानीमें असन, विल्व, आम, करवीरके पत्ते या

कस्तूरीको पानीमें मिलाना चाहिए[1]। धुँआँ देनेके लिए नख, कुष्ट, धान्यक [धनियाँ], जटामाँसी, शैलेय [शिलारस], सर्ज, केसर, चन्दन, अगरु, सरल, मुस्ता, सरलकाष्ठ, देवदारु, कर्पूर, क्रान्ता [हल्दी], बला, कुन्दरूको मिलाना चाहिए। पानीमें मिलानेसे पूर्व इनको महीन पीसकर इनमें साल वृक्षका रस मिलाकर इनकी बत्तियाँ बनाकर सुखा लेनी चाहिए। स्नानसे पूर्व इनको पानीमें घोलना चाहिए। तेलको सुगन्धित करनेके लिए दालचीनी, नाड़ी, जायफल, केसर, ग्रन्थि, शैलेयज, तगर, क्रान्ता, कोल, कर्पूर, मांसी, मुरामांसी और कुष्ठको तेलमें मिलाना चाहिए। स्नानसे पूर्व यह तैल शरीर पर लगाना चाहिए। स्नानसे पूर्व दालचीनी, केसर, मुरा, वालक, नलदको तेलमें मिलाकर मलनेसे कमलकी गन्ध आती है। इस तेलमें यदि तगरका परिमाण अन्य वस्तुओंसे आधा कर दिया जाय तो इस तेलसे चमेलीके फूलोंकी गन्ध आती है। इसमें मौलसरीके फूल भी मिलाये जाते थे।[2]

मुखको सुगन्धित करनेके लिए इलायची, लौंग, कंकोल, जायफल, कर्पूर, जावित्रीका चूर्ण उपयोगमें लाया जाता था।

बृहत्संहितामें प्रसाधन सम्बन्धी विशद उल्लेख मिलते हैं। इसमें काम आनेवाली औषधियाँ ये हैं—कस्तूरी, जातीफल, मालती, तमाल, नागकेसर, हरेणुका, कुष्ठ, जटामांसी, प्रियंगु, मृणाल, गन्धमूल, पीत चन्दन, हरिद्रा, मंजिष्ठा, यष्ठीमधु, वच, धान्यक, मरुबक, मूर्वा, सर्जरस, गुग्गुल

---

१. (क) स्वेदादिकृतदौर्गन्धहरणाय चन्दनादिना उद्वर्त्तनानुलेपनादिः।

—सारसुन्दरी

(ख) असन बिल्वादि तैल—

असनबिल्वबलामृतपाचिते मधुकनागरकक्कथितान्विते।
पयसि तैलमिदं पयसा पचेत् नयनकर्णशिरोगतमुत्तमम्॥

२. स्रग्गन्धधूपनवरभूषणदाम न शोभन्ते शुक्लशिरोरुहस्य।

लाक्षा, आमलक, विभीतक, शुण्ठी, पिप्पली, मरिच, कंकोल, दर्भ, मातुलुंग और पद्म आदि।

केशरञ्जन

श्वेत बालों वाले व्यक्तिके लिए माला, मधुरसुगन्ध, धूप, वस्त्र, आभूषण और सुगन्धित लेप सब व्यर्थ हैं। इसलिए मनुष्यको कृत्रिम रूपमें बालोंको काला करना चाहिए। इसके लिए एक लौह पात्रमें कोदा चावलको लोह चूर्णके साथ मिलाना चाहिए। इसको पानीमें उबालकर अच्छी प्रकार मिला लेना चाहिए। जब सब भली प्रकार मिल जाँय तब इसको शिरपर लगाकर दो पहर [छः घण्टे तक] रहने देना चाहिए। लेप लगाकर शिरको आकन्द [आक] के पत्तेसे ढाँक देना चाहिए। इसके पीछे सिरको धोकर आँवलेको पीसकर सिरपर लेप कर दें और आकके पत्तेसे ढाँक दें। इसी प्रकार अगले छः घंटे तक रहने देना चाहिए। फिर इसको धो देना चाहिए। इससे श्वेत बाल काले हो जाते हैं।

शार्ङ्गधर पद्धतिमें इसकी अनेक विधियाँ विस्तारसे दी गयी हैं। इनमें कुछ इस प्रकार हैं—

त्रिफलामिश्रित ६ भाग [हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक दो भाग], अनारकी जड़ दो भाग, हल्दी ३ भाग। इन सबका चूर्ण करके इसमें एक भाग सांठीके चावलोंका चूर्ण मिलाये। फिर बीस भाग भाँगरेका रस मिला कर लोहेके पात्रमें रखकर लोहेके ढक्कनसे ढँककर घोड़ेकी लीदमें गाड़ देना चाहिए। एक महीनेके बाद इसको निकालकर इसमें दूध मिलाकर मनुष्य के शिरपर तथा माथेपर भ्रुवोंके ऊपर लगाना चाहिए। इस लेपको एरण्ड के पत्तोंसे ढाँक देना चाहिए। इसको रातभर लगे रहने दें। अगले दिन प्रातःकाल स्नान करें। इस प्रयोगसे बाल काले हो जाते हैं। यदि यही प्रयोग सात-सात दिनके अन्तरसे लगातार तीन बार किया जाये तो सदाके लिए बाल काले हो जाते हैं।

बिभीतक, नीम, गम्भारी, हरीतकी और किङ्कणी इनमेंसे किसी एक का भी तेल लगानेसे श्वेत बाल काले हो जाते हैं। इसी प्रकार श्यामा, तगर, निशा [हल्दी], गन्धक, कचूर इनका लेप करनेसे या सीरेका धूम देनेसे बाल काले हो जाते हैं।

काकिनी [रत्ती-गुञ्जा], सहचरके [आमके] पत्ते और जड़, केतकीकी बालमंजरी, भृङ्गराज इनको छायामें सुखाकर त्रिफलाके क्काथमें मिलाकर लोहेके पात्रमें डालकर एक मास तक भूमिमें गाड़ देना चाहिए। इस तेलको लगानेसे खसके समान सफेद बाल भी काले हो जाते हैं।

सीसेकी पतली प्लेट लेकर उस पर अनाजकी राखका लेप करके [सम्भवतः यवक्षारका लेपकर] इस प्लेटको लोहेके पात्रमें रखकर लोहपात्रसे ही ढाँककर पाँच मास तक गोबरमें गाड़ देना चाहिए। जब अन्दरकी वस्तु— सीसेंकी प्लेट—द्रव बन जाये तब इसको निकाल कर शिर और माथेपर लगाना चाहिए। इस समय थोड़ेसे चावल मुखमें रखने चाहिए। जब ये चावल काले हो जायें, तब स्नान करना चाहिए। यदि मनुष्य इस विधिका प्रयोग करेगा तो उसके बाल काले हो जायँगे।

तेल—चाँदी, ताम्र, सीसाकी भस्म, त्रिफला, नागवल्ली, कासीस, गन्धक, भृङ्गराजका स्वरस, नील और लोध प्रत्येक वस्तु एक पल। इन वस्तुओंसे चार गुना तेल। शुक्त या कांजी तेलसे चार गुना लेकर तेल पकाना चाहिए। इस तेलको सिरपर लगाकर पीछेसे एरण्डके पत्ते बाँध देने चाहिए। दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करना चाहिए। इससे चौदह दिनों तक बाल काले रहते हैं।

श्वेत बालोंको उखाड़कर बालोंकी जड़में कोल्हूसे निकला हुआ करञ्जकी मज्जाका तेल लगाना चाहिए। इससे काले और सुन्दर बाल निकलते हैं। मेषशृङ्गीका स्वरस लगानेसे भी यही परिणाम होता है।

इसके आगे इन्द्रलुप्त [**गंज**] तथा बाल निकलनेके योग दिये हैं। गंजके लिए हाथी दाँतकी निर्धूम भस्मको भेड़के दूध और रसांजन [रसौंत] में मिलाकर लगाना चाहिये।

बालोंको साफ़ करनेके लिए—कर्पूर, भिलावा; शंखभस्म, यवक्षार, मैनसिल, हरताल इनको मिलाकर गरम करके लगाना चाहिये।

बालोंके लिए सुगन्धित तैल—वराहमिहिरने इसके लिए योग लिखा है—दालचीनी, कुष्ठ, मंजीठ, व्याघ्र-नख, अतिमुक्ता इनको तेलमें मिलाकर धूपमें सुखाना चाहिए। इस प्रकार बनाये तेलमें चम्पककी गन्ध आती है।[1]

तेजपत्र, तुरुष्क, बला और तगरको पूर्वकी भाँति तैलमें मिलानेसे उत्तम गन्ध आती है। इसमें यदि रोहिषतृण मिला दिया जाए तो मौलसरी [**बकुल**] की गन्ध आती है; इसमें कुष्ठ मिलानेसे कमलकी गन्ध आती है। दालचीनी मिलानेसे चम्पाकी और जायफल मिलानेसे अतिमुक्ताकी गन्ध आती है।

८ श्री उमेशचन्द्रदत्तने सुगन्धित तैलका एक योग अपनी पुस्तक [**मैटेरियामैडिका ऑफ हिन्दूज**] में दिया है। इसमें—तिलतैल, एरण्डतैल, नारियलका तेल, इनको दालचीनी, इलायची, लौंग, केसर, जटामांसी,

---

१. पुन्नागचम्पकोद्दामगन्धसंवासितैस्तिलैः।
यंत्रसम्पीडितैस्तैलं गृहीत्वाऽभ्यङ्गमाचरेत् ॥
केतकीगर्भपत्राभनखैस्तरुणीजनैः।
सुकुमारकरस्पर्शं हर्षोत्कर्षकरैर्वृत्तः ॥
औषधिगन्धसंसिद्धैः स्तुत्यैर्दोषापहैः शुभैः।
तैलैरभ्यज्य गात्राणि मल्लैः संवाहवेदिभिः ॥
मृदुहस्ततलैः स्वैरैः मर्दनं च समाचरेत् ॥
—मानसोल्लास १।३।९३१-९३३।

अगरु, तमालपत्र, श्वेत चन्दन, मुस्ता, कंकोल, देवदारुका बिरोजा, शैलेयक, [शिलारस], गजपिप्पली, खस, नख, कर्पूर, कस्तूरी, सर्जरस और लताकस्तूरी इनको एक साथ पकाना चाहिये।

एरण्डतैलको साफ करनेके लिए मदारके पत्ते, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वैजयन्तीके पत्ते, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, नालिका, सोंठ, केतकी की मंजरी डालकर उबाला जाता है। चार सेर तेलको स्वच्छ करनेके लिए प्रत्येक वस्तु आधा-आधा तोला पर्याप्त है।

आज भी तमाखूको बनाते समय उसमें कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुओंके साथ सीरा गुड़ मिलाकर धूमवत्ती बनाई जाती है।[1]

---

१. अधुना धूपभोगोऽयं वर्ण्यते सौरभोत्कटः।
लाक्षागुग्गुलुकर्पूररालकुण्टुरुसिल्हकम्॥
श्रीखण्डं दारु सरलं लघुकोष्टं च वालकैः।
मांसी कुंकुमपथ्याश्च कस्तूरी पूतिबीजकः॥
शंखनाभिनखैश्चैव सितामधुघृतं गुडः।
सामान्येतानि चूर्णानि द्रवद्रव्यं विहाय च॥
द्विगुणं लघुकर्पूरं चूर्णधूपोऽयमुत्तमः।
एतान्येव हि सिल्हेन मिश्रयेन्मधुसर्पिषा॥
गुडेन पिण्डयेत्पश्चात् पिण्डधूपो वरो मतः।
द्रव्याण्येतानि तोयेन पिष्टानि मधुसर्पिषा॥
वर्त्तिरूपाणि शुष्काणि वर्त्तिधूपो मनोहरः।
रीतिरूपमयो वापि सुवर्णघटितोऽथवा॥
खगो वाऽपि मृगो वाऽपि सरन्ध्रः सम्पुटात्मकः।
अंगारगर्भिते [तो] पिण्डेनान्वितो धूपमुद्गिरेत्॥
मुखकर्णादिभिश्छिद्रैः पिण्डधूपे त्वयं क्रमः।

—मानसोल्लास १६।३।६७–१०४

सुगन्ध—नासिकासे ग्रहण की जानेवाली वस्तु गन्ध है। यह दस प्रकारकी होती है–१ इत्र—जैसे कस्तूरीकी सुगन्ध, २–अनिष्ट–जैसे मृतशरीर की; ३–मधुर–जैसे महुएके फूलोंकी; ४–कटु–जैसे पिप्पलकी; ५–निर्हारी–जैसे हींगकी; ६–संवत–जो मिश्रित वस्तुओंकी मिली गन्ध होती है; ७–स्निग्ध–मक्खनसे घी बनाते समय जो सुगन्ध उठती है; ८–रूक्ष–जैसे सरसोंके तेलकी; ९–विशद–जैसे शालि [**हेमन्तधान्य**] के पकनेकी गन्ध होतो है; १०–अम्ल–जैसे बिजौरे नीबूमें से आती है।

महाभारतमें सुगन्ध पाँच प्रकारसे प्रस्तुत किये जानेका विवरण मिलता है; १–वस्तुओं को कूटकर चूर्ण बनाकर, २–पत्थर आदि कठिन वस्तुपर घिसकर, ३–वस्तुको जलाकर, ४–वृक्षके सारभागसे निकालकर, ५–पशुओंके शरीरसे निकालकर [**महाभारत शान्ति पर्व**]।

सुगन्धितधूप—घरों और वस्त्रोंको सुगन्धित करनेके लिए वराहमिहिरने बहुतसे धूम बताये हैं।

शतपुष्पा [**सौंफ**], कुन्दरू प्रत्येक १/४ भाग, नख और तुरुष्क प्रत्येक १/२ भाग; चन्दन और प्रियंगु प्रत्येक एक भाग मिलाकर इसे जलाया जाये तो बहुत मीठी सुगन्ध बनती है। गुग्गुलु, खस, लाक्षा, मुस्ता, नख और शर्करा इनको समान भागमें मिलाना चाहिए। इसी प्रकारसे जटामांसी, बालक, नख, चन्दन इनको समान भागमें मिलाकर सुगन्धित धूप तैयार की जाती है।

तगर, नख, तुरुष्कको समान भागमें मिलाकर इस मात्रामें जावित्री, कर्पूर, कस्तूरी, गुड़ और नख मिलाकर जलाना चाहिए। इसका नाम सर्वतोभद्र है।

अपनी सहूलियतके अनुसार ऊपर लिखे सुगन्धित द्रव्य एकत्र करके इनमें जायफल, कर्पूर, कस्तूरी, आमका रस और शहद मिलाकर जलाये तो पारिजात पुष्प जैसी सुगन्ध आती है।

शार्ङ्गधरपद्धतिमें सुगन्ध तैयार करनेकी अन्य विधियाँ दी हैं—यदि सुगन्धित धूपमें तेजपत्र, चन्दन, जटामांसी, शर्करा, अगुरु, बला और मधु इन सबको समान मात्रामें मिलाया जाये तो कुंकुमकी सुगन्ध आती है। मलयानिल धूपमें अगुरु, कुष्ट, शिवा, सर्जरस और शर्करा मिलाते हैं। यह धूप देवताओंको प्रिय है।

दशांगधूपमें सूरण, द्वीपदान [**हाथीका मद**] शिलारस, गौर-सर्षप, कुंकुम, अगरु, रम्भा, कस्तूरी, चन्दन और गुग्गुलु ये दस वस्तुएँ होती हैं। इसका नाम सम्मोहन धूप है। इसकी गणना सर्वश्रेष्ठ धूपोंमें होती है।

बुद्धिमान मनुष्यको अपने घर और वस्त्र दोनोंको धूप देना चाहिये। इसके लिए कपूर, नख, गिरी, कस्तूरी, जटामांसी और लोबान [**या बिरोजा**] प्रत्येकका एक-एक भाग; सफेद चन्दन और अगरू दो भाग, इन सबको मिलाकर सीरेसे चिकना बनाकर धूप दे।[1]

धूपवर्त्ती और दीपवर्त्ती बनानेके योग भी शार्ङ्गधरपद्धतिमें दिये हैं—धूपवत्ती बनानेके लिए नखी, अगरु, शिलारस, बला, कुन्दरु, शैलेय, चन्दन और श्यामा इनको क्रमशः मात्रामें बढ़ाकर लेना चाहिए। ये वर्त्तियाँ राजाओंको भी दुर्लभ कही गयी हैं।

कस्तूरी, कपूर, कुंकुम, गोरोचन, शिलारस, यवनकाष्ठ [?], बला, जटामांसी, गुग्गुल इनको क्रमशः बढ़ी मात्रामें लेकर इनमें सीरा, घी और शर्करा मिलाये। इसका नाम मन्मथवर्ती है। यह कष्टसाध्य है और सम्पन्न लोग ही इसका निर्माण करानेमें समर्थ हैं।

---

१. हरिद्रां कुंकुमञ्चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा।
कार्पासकञ्च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम्॥
केश संस्कारकवरीकरकर्णविभूषणम्।
भर्त्तुरायुष्यमिच्छन्ति दूरयेन्न पतिव्रता॥ —मार्कण्डेय पुराण

राजाके लिए दीपवर्ती—देवदारु, पद्मकाष्ट, मुस्ता, लाक्षा, अगरु, शिलारस और कपूर इनसे बनती है। दूसरी दीपवर्त्ती—गन्धरस, शैलेय, गुग्गुल, कपूर, श्वेत और लालचन्दन, कूठ और पूती [करंज] के मिलानेसे बनती है।

मुखको सुगन्धित करनेके लिए शार्ङ्गधरने निम्न मुखवास बताये हैं—इससे मुखकी दुर्गन्ध दूर होती है—जायफल, कस्तूरी, कपूर, आमका रस इनको मुखमें लगाना चाहिए। अगुरु, शिलारस, मधु और सीरा इनको मिलाकर लगाया जाये तो मुख सुगन्धित हो जाता है।

मुख धोनेके लिए पानीको सुगन्धित बनानेके लिए पानीमें छोटी इलायची, कस्तूरी, कुष्ट, दालचीनी, तेजपात, सफेद और लाल चन्दन मिलाना चाहिए। पानीमें चम्पक पुष्पकी गन्ध पैदा करनेके लिए इसमें दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, खस और छोटी पिप्पलनी मिलाना चाहिए।

अंगवास (शरीरकी सुगन्ध) के लिए शार्ङ्गधरने कहा है कि जो व्यक्ति कुष्ट, मुरामाँसी, नागकेसर, इनको प्रतिदिन मधु और घीसे खाता है उसके शरीरसे मधुर गन्ध आती है। यदि मनुष्य कुष्ट, रज (?) इनको प्रतिदिन मधु और घी के साथ प्रातः खाता रहे तो उसका शरीर दृढ़ और सुगन्धित हो जाता है।

जिस पानीमें श्वेत चन्दन, इलायची, तेजपात, उशीर, तगर बहुत समय तक रक्खे गये हों; उस पानीको यदि मनुष्य पीता है, तो उसके शरीरसे सुगन्ध आने लगती है। यदि पानीमें बला, श्वेत चन्दन, सहजन के बीज, तेजपत्र (एक चौथाई भाग) मिलाकर रक्खा जायँ तो पानीमें केवड़ेकी गन्ध आने लगती है।

यदि पानीमें सरसोंकी खलीको सहजन मूलके क्वाथमें पकाकर पानीमें मिलाकर सारी रात रख दें, और प्रातः इस पानीसे स्नान किया जाये तो मनुष्यके शरीरसे चम्पक पुष्पकी गन्ध आती है।

यदि केवड़ेकी मंजरी, कुष्ट, इलायची, तेजपात, नागकेसर इनको देर तक पानीमें रखा जाय तो इसमें बहुत सुगन्ध आ जाती है, यहाँ तक कि शहदकी मक्खियाँ भी इसपर आकर्षित होती हैं।

अमरकोशमें प्रसाधन सामग्री पर बहुत विस्तारसे लिखा गया है। इसमें 'अंगसंस्कार' के लिए पृथक् प्रकरण है। शरीरको स्वच्छ करनेके लिए 'मार्ष्टि-मार्जन, सुगन्धित वस्तुओंसे शरीरको साफ़ करनेके लिए उद्वर्त्तनोत्सादन; सारे शरीर पर चन्दनका लेप करना। शरीर पर किये चित्र कर्मके लिए पत्रलेखा, पत्रांगुलि, तमालपत्र, तिलक चित्रकानी, वैशेषिकम् शब्द आये हैं। स्तनों और कपोलों पर केसर लगानेके लिए कुंकुम काश्मीरजम् शब्द आते हैं। इसी प्रकार प्रसाधन वस्तुओंमें चन्दन, लोहित चन्दन, लाक्षा, अगरु, सर्जरस, सरल, कर्पूर आदि नाम आते हैं।

वात्सायन कामसूत्रमें एक नागरिक और उसकी पत्नीके प्रसाधनका चित्र अंकित किया गया है। नागरिकको चाहिए कि प्रातःकाल उठकर अपने नित्यकर्म करके, दातूनसे मुख साफ़ करे।[1] फिर शरीर पर उचित रूपमें (मात्रया) चन्दन आदिका लेप करे अथवा सुगन्धित-मधुर गन्धवाले पदार्थका लेप लगाये। इसके पीछे अपने वस्त्रों पर अगरुका धूप देकर माला धारण करे। वह इत्र आदि अन्यान्य सुगन्धियोंका भी प्रयोग करता था, और उसके पास सुगन्ध मंजूषा रहती थी। आँखमें अंजन करता था, यह अंजन भिन्न-भिन्न वस्तुओंसे तैयार होता था। ओठोंपर आलक्तक लगाकर इस पर मोम रगड़ता था, जिससे उसका रंग पक्का हो जाय। फिर दर्पणमें चेहरा देखता था। मुखको सुगन्धित करनेके लिए पान

---

१. स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः गृहीतदन्तधावनः मात्रयाऽनुलेपनं धूपं स्रजमिति च गृहीत्वा दत्त्वा सिक्थमलक्तकं च दृष्ट्वादर्शे मुखं गृहीतमुखवासताम्बूलः कार्याण्यनुतिष्ठेत् ॥ —कामसूत्र.

खाकर वह काम पर जाता था। वह अपने बाल बनवाता था और प्रतिदिन स्नान करता था, शरीरको साफ़ करनेके लिए फेनकका उपयोग करता था।

उत्सव और पर्व आदिके अवसरों पर जब उसकी स्त्री सम्मिलित होती थी तो वह भी सुगन्ध लगाकर आभूषणोंको उचित मात्रामें-धारण करती थी; इस समय वह श्वेत फूलोंको धारण करती थी। जब वह अपने स्वामीको देखने जाती थी तब अपने प्रसाधन पर बहुत ध्यान देती थी। इस समय वह बहुत सावधान, आकर्षक और परिष्कृत रहती थी। अनेकानेक आभूषण, विविध रंगके और विविध प्रकारकी सुगन्धवाले फूल, इत्र आदि सुगन्धि पूर्ण द्रव्योंका प्रयोग करती थी, इस प्रकारसे अपनेको सुन्दर और आकर्षक बनाती थी। गलेमें माला धारणकर और शिरपर आपीडक (जूडा) बाँधकर माला-वेणी धारण करती थी। कानोंमें आभूषण पहनती थी। मस्तक और कपोल पर चित्रकर्म रूपमें वैशेषिक किया जाता था।

ललित विस्तरमें अनुलेपनके अतिरिक्त अनेक प्रकारके सुगन्धित जल, सुगन्धित तैल, चन्दनके सुगन्धित चूर्णका और अन्य मधुर गन्धवाले द्रव्योंका उल्लेख मिलता है। [**विविधगन्धोदकपूर्णघटपरिगृहीतैः—१५।२१७; दिव्यगन्धपरिवासिततैलपरिगृहीतानि—७।९६, वैजयन्तीपुष्पागुरुतगर-चन्दनचूर्ण वर्षा—२१।३१४**]।

मनुष्यकी अपेक्षा स्त्रीके लिए प्रसाधन सामग्री अधिक थी। सौभाग्य-वती स्त्री जो अपने पतिके लिए दीर्घायुकी कामना करती है उसे हल्दी, केसर, सिन्दूर, कज्जल, आंगी (कञ्चुक), तांबूल, मांगलिक आभूषण, बालोंको सँवारना, सिर हाथ और कानके आभूषणोंका धारण करना कभी भूलना नहीं चाहिए[1]।

---

१. श्रीगिरिजाप्रसन्न मजूमदार लिखित "सम एस्पैक्ट्स आफ इंडियन सिविलिजेशन" के आधार पर।

पीछेसे इन वस्तुओंको श्रृंगारका नाम दे दिया गया। इन श्रृंगारोंकी संख्या सोलह है—

अंग शुची मंजन वसन मांग महावर केश।
तिलक भाल तिल चिबुकमें भूषण मेंहदी वेश॥
मिस्सी काजल अरगजा बीरी और सुगन्ध।
पुष्पकली युत होयकर तब नव-सप्त निबन्ध॥

उबटन, स्नान, स्वच्छवस्त्र धारण, माँग भरना, महावर लगाना, बाल सँवारना, तिलक लगाना, ठुड्डीपर तिल बनाना, आभूषण पहनना, मेंहदी लगाना, दाँतोंमें मिस्सी, आँखोंमें अंजन या काजल लगाना, अरगजा, पान खाना, माला-गजरा पहनना, हाथमें नीला कमल धारण करना [**हस्तलीला कमलमलके बालकुन्दानुविद्धम्—उत्तर मेघ**]

श्रृंगारोंकी संख्या सोलह क्यों हुई इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं। भगवान्‌की षोडश उपचार पूजा है, संस्कारोंकी संख्या भी सोलह है। स्त्रियोंमें चन्द्रकलाका स्थान सोलह मानते हैं। सम्भवतः इन्हीं बातोंको देखकर श्रृंगार भी सोलह गिने गये।

सोलह श्रृंगार सदा एक समान नहीं मिलते। वल्लभदासकी सुभाषितावलीके अनुसार षोडश श्रृंगारोंके नाम ये हैं—१–मंजन, २–चीर, ३–हार, ४–तिलक, ५–अंजन, ६–कुण्डल, ७–नासामौक्तिक, ८–केशपाश रचना, ९–कंचुक, १०–नूपुर, ११–सुगन्ध [अंगराग], १२–कंकण, १३–चरणराग [आलक्तक] १३–मेखलारणन [क्षुद्रघण्टिका], १५–ताम्बूल, १६–करदर्पण [आरसी][1]।

---

१. **आदौ मंजनचीरहारतिलकं नेत्राञ्जनं कुंडले**
नासामौक्तिककेशपाशरचना सत्कञ्चुकं नूपुरौ॥

उज्ज्वल नीलमणिके राधाप्रकरणमें ये सोलह शृंगार इस प्रकारसे मिलते हैं—१–स्नान, २–नासाग्रजाग्रन्मणि [नासामौक्तिक—जैसा सिन्धी औरतें पहनती हैं, शायद यही नथका उद्‌गम हो], ३–असितपट, ४–सूत्रिणी [नीवी बन्धयुक्ता], ५–वेणी बन्धन, ६–कर्णावतंस, ७–अंगों का चर्चित करना, ८–पुष्पमाला धारण करना, ९–हाथोंमें कमल लेना, १०–बालोंमें फूल खोंसना, ११–ताम्बूल, १२–चिबुकको कस्तूरीसे चित्रित करना, १३–काजल, १४–मकरी पत्रादिसे शरीरको चित्रित करना, १५–आलक्तक, १६–तिलक।[1]

सतरहवीं शताब्दीमें रीतिकाव्यके आद्य प्रवर्त्तक केशवदासने भी षोडश शृंगारोंका वर्णन किया है, इनमें—उबटन, स्नान, अमलपट्ट, [महावर] जावक; वेणी गूँथना, माँगमें सिन्दूर भरना, ललाटमें खौर लगाना, कपोलोंमें तिल बनाना, अंगमें केसर लगाना, मेंहदी, पुष्पाभूषण, स्वर्णाभूषण, मुखवास, दन्तमंजन, ताम्बूल और काजल।

यहाँ पर मेंहदी एक नये शृंगारके रूपमें दिखाई देती है। मदयन्तिका का नाम सुश्रुतमें आता है। सुश्रुतका समय ईसाकी दूसरी या तीसरी शताब्दी है। सुश्रुतके प्रसिद्ध टीकाकार डल्हणका समय ग्यारहवीं या बार-

---

सौगन्ध्यं करकङ्कणं चरणयो रागोरणन्मेखला।
ताम्बूलं करदर्पणं चतुरमा श्रृङ्गारकाः षोडश॥
—ए. बी. ओ. आर. आई. खण्ड १९। भाग ४-पृ० ३१३

1. स्नाताना साग्रजाग्रन्मणिरसितपटा सूत्रिणीबद्धवेणी
सोत्तंसा चर्चिताङ्गी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्महस्ता।
ताम्बूलास्योरुविन्दुस्तबकितचिकुरा कज्जलाक्षी सुचित्रा
राधालक्तोज्वलांघ्री स्फुरति तिलकिनीषोडशाकल्पनीयम्॥
—उज्ज्वलनीलमणि, निर्णय सागर पृ० ७७

६वीं शतीका है। मदयन्तिकाको मेंहदीका पर्याय बताया है। डल्हणके समय मेंहदीका प्रचार भारतमें था।

पीछेसे इन शृङ्गारोंमें मिस्सी भी गिनी जाने लगी। नगेन्द्रनाथ वसुने हिन्दी विश्वकोषमें ये सोलह शृङ्गार गिने हैं—१–अंगोंमें उबटन लगाना, २–नहाना, ३–स्वच्छ वस्त्र धारण करना, ४–बाल सँवारना, ५–काजल, ६–सिन्दूरसे माँग भरना, ७–महावर लगाना, ८–तिलक लगाना, ९–चिबुक पर तिल बनाना, १०–मेंहदी लगाना, ११–सुगन्ध लगाना, १२–आभूषण पहनना, १३–फूलोंकी माला पहनना, १४–मिस्सी लगाना, १५–पान खाना, १६–ओठोंको लाल करना।[1]

मल्लिनाथने मेघदूतकी टीकामें पाँच प्रकारके प्रसाधन या शृङ्गार बताये हैं—

> कचधार्यं देहधार्यं परिधेयं विलेपनम्।
> चतुर्धा भूषणं प्राहुः स्त्रीणामन्यच्च देशिकम्॥

१. कचधार्य—वेणी या केश रचना, २. देहधार्य—शरीरका शृंगार करना, ३. परिधेय—ओढ़ना या पहिनना—वस्त्रोंकी सजावट, ४. विलेपन—अनेक प्रकारके अंगराग, उबटन, तेल, इत्र, आदि लगाना, जिससे शरीर की सुन्दरता बढ़े। इन चार शृंगार प्रकारोंके सिवाय प्रत्येक देशकी भिन्नता या रुचिके अनुसार भी शृंगार कला प्रचलित थीं।

इन चारों शृंगारोंका फल भी महाकवि श्री मंखने अपने श्रीकण्ठचरित महाकाव्यमें बताया है। आपका कहना है कि अधम सौन्दर्यवाली स्त्रियोंमें शृंगारसे सौन्दर्य नहीं आता। मध्यम सौन्दर्यवाली स्त्रियोंमें मण्डनसे सौन्दर्य बढ़ जाता है। उत्तम सौन्दर्यवाली स्त्रियोंमें शृङ्गारसे सौन्दर्य ढँप

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६२, अंक २-३—२०१४ लेखक—बच्चनसिंहके लेखसे उद्धृत।

जाता है ।[१] कालिदासकी पार्वती और शकुन्तलाका सौन्दर्य उत्तम श्रेणीका था । इसीसे उनको बाह्य वैशेषिककी जरूरत नहीं थी । पार्वतीका जो शृङ्गार हुआ वह तो केवल मंगल कार्यका आवश्यक अंग ही था, जिससे वे और भी अधिक शोभायुक्त हो उठी थी ।[२]

कचधार्य-प्रसाधन—बालोंको सजाने या गूँथनेकी क्रिया है । यह अनेक प्रकारसे की जाती थी । यथा—आँवलेसे सिर धोकर सुगन्धित जलसे स्नान होता था । फिर अगुरुका धूप देकर बाल सुखाये जाते थे, उसके पीछे चोटी गूँथी जाती थी । जूड़ेमें फूल खोंसा जाता या कबरी बाँधकर वेणीमें फूलोंको लगाते थे । बाल धोकर, सुखाकर ही तैल डालना उत्तम है ।[3]

कभी-कभी अगरुका धूप देनेके पीछे फिर तेल मला जाता था, उसके पीछे फिर चम्पी की जाती थी । [**सम्पीड्य मन्दं शिरः**] और तब केशों को गूँथा जाता था [बध्नाति कुन्तलभरं कुटिलान्तकेशी] ।

---

१. कासाञ्चित्समभून्नवीनमगमद् कासाञ्चन व्यक्तताम्
अन्यासां ववृधे विनिह्नुतमभूत् कासाञ्चनाकृत्रिमम् ॥

२. इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ शाकुन्तल० १।१६ ।
तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य तन्वीं क्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः ।
भूतार्थशोभा ह्रियमाणनेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्यः ॥

—कुमार० ७।१३।

३. स्नेहं परित्यज्य निपीय धूमं कान्ताकचा मोक्षपथं प्रपन्नाः ।
नितम्बसंगात्पुनरेव बद्धा अहो दुरन्ता विषयेषु सक्तिः ॥

केश प्रसाधन की तो हजारों शैलियाँ थीं जो प्रत्येक युगमें अपनी विशेषताओंसे युक्त थी। अनेक बेणियाँ गूँथनेका आम रिवाज था।

स्नान के पीछे बालोंका पानी निचोड़ा जाता था। मथुराके एक रेलिंग स्तम्भ पर बाल निचोड़नेका एक चित्र उत्कीर्ण है। जिसमें एक नारी स्नानके पश्चात् बाल निचोड़ रही है और हंस मुक्ताके भ्रममें टपकती बूँदोंको चोंचसे ले रहा है। केशोंको तौलिये से पोंछकर पहले धूपके धुँएँसे सुखाते थे। इससे बालोंके सूखनेके साथ इनमें सुगन्ध भी भर जाती थी। फिर बालोंमें तेल लगाकर कंघेसे सँवार लेते थे। बालोंके साथ एक मोटी गाँठ बाँधकर या वेणीके रूपमें अथवा जूड़ा बाँधकर धारण करते थे। केशप्रसाधनमें अलकजाल भी बनाये जाते थे और घुंघराली लटें, ललाट और कंधों पर शोभित की जाती थीं। फिर इन्हें रत्नों, मोतियों या फूलोंसे गूँथकर सजा लिया जाता था। विरहिणियाँ प्रसाधन नहीं करती थी। वे एक ही वेणी बनाती थी [पुष्पांजलि–१९५७]

देहधार्य—शरीरकी सजावट भिन्न-भिन्न प्रकारसे होती थी। इस सजावटमें पत्रोंका और पुष्पोंका उपयोग होता था। कानोंमें जौके बाल [**अंकुर**], शिरीषके पुष्प; केतकीके फूल लगाये जाते थे। माथे तथा कपोलपर तमालपत्र या रंगोंसे शरीरको सजाया जाता था [**भक्ति-चित्रकर्म करना**]। स्त्रियाँ यह सजावट स्तनों और बाहुओंपर भी करती थीं। पत्र और पुष्पों तथा भक्ति कार्यके बिना भी आभूषणोंसे शरीरका शृंगार होता था।

परिधेयः—वस्त्रोंके परिधानसे अंगोंका सौष्ठव बढ़ जाता है। पतिके पास जानेके लिए पत्युद्गमनीय वस्त्र पहिना जाता था। कालिदासने इसे 'अभिषेकयोग्य' वस्त्र कहा है [**वासो वसानामभिषेकयोग्यम्—कुमार० ७।**]। तारुण्यकी छलकती हुई कान्तिसे चमकती होने पर भी ताम्बूल और पुष्पोंकी अनेक विधियोंसे समलंकृत होने पर भी स्त्रियाँ पट्टमय वस्त्र युगका परिधान करके ही प्रियके समीप जाना पसन्द करती थीं।[1] यह वस्त्र नाना प्रकारके नेत्र रंजक वर्णोंसे रंगा होता था। सुवेषका सुफल यही है कि वह देखनेमें सुन्दर लगे। [**स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेशः।**]

विलेपन—शरीर पर केसर, कस्तूरी, चन्दन, गोरोचन आदिका लेप शरीरके पसीनेकी दुर्गन्धको कम करनेके साथ-साथ सजानेके लिए किया जाता था। कस्तूरी, केसर, चन्दनको मिलाकर या अगरु और चन्दनको [**काले और श्वेतरंग को**] मिलाकर शरीर पर लगानेकी पद्धति थी। इस लेपनमें नाना प्रकारके चित्रकर्म [**शालभञ्जिका आदि**] शरीरके भिन्न-भिन्न अंगों पर किये जाते थे। यह प्रथा स्त्रियोंमें तो थी ही पुरुष भी इस लेपनको शरीर-सौन्दर्य की वृद्धिके लिए बरतते थे। यही कारण था कि प्राचीन कालमें दो ही वस्त्र उत्तरीय ओर अधोवस्त्र पहिननेकी प्रथा थी। ऐसा विदित होता है ये वस्त्र सिले हुए नहीं होते थे।

---

१. तारुण्यकान्त्युपचितोऽपि सुवर्णहारः
ताम्बूलपुष्पविधिना समलङ्कृतोऽपि।
नारीजनः प्रियमुपैति न तावदश्र्यां
यावन्न पट्टमयवस्त्रयुगानि धत्ते॥
स्पर्शवता वर्णान्तरविभागचित्रेण नेत्रसुभगेन।
यैः सकलमिदं क्षितितलमलंकृतपट्टवस्त्रेण॥
—कुट्टिनीमतम्॥

विलेपनमें कस्तूरी, केशर, चन्दनका मिश्रण होता था। [**कस्तूरिकाकुंकुमचन्दनाद्यैरुदवर्त्तिताङ्गो युवतीव दीव्येत्**]। उद्वर्त्तनके बाद अंगों पर श्वेत अगर भी लगाते थे [**विन्यस्तशुक्लागुरुचक्रुरङ्गम्**]। अधिक गौर वर्ण करनेके लिए गोरोचनाका लेप करते थे [**गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे तस्याः कपोले—कुमार०**] केशरसे अंग रचे जाते थे [**अथ काचिदङ्गपथमाच्छुरयद घुसृणेन**]; कपूरके चूर्णसे सारे शरीरको गोरा करनेका प्रचलन था [**इतरा तरुण्यकृतपाण्डुरितं घनसाररेणुविसरेण-वपुः**]। चन्दनसे माथे पर पत्ररेखा बनाते थे [**अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्विभाव्यते चन्दनपत्ररेखा**]। नायिकाएँ कस्तूरीका तिलक लगाती थीं। वशीकरणके लिए गोरोचनाका तिलक लगाया जाता था। कपूरसे या श्वेत चन्दनसे 'बालेन्दुलेखा तिलक'–प्रतिपदाके चन्द्रमाके समान-बारीक टेढ़ा तिलक माथे पर किया जाता था। [**कपूरपंकेन करोति बाला बालेन्दुलेखा तिलकं ललाटे**]। अगरुसे तिलक किया जाता था [**मृगचक्षुषाऽलकतले लिखितं यद्लिख्यतागुरुरसेन सकृत्**]।

प्रसाधन करनेके उपरान्त नायिका अपना मुख दर्पणमें देखती थी [**दधौ मुकुरं करे सुरपुरंध्रिजनः— २—भस्मानुलिप्ते वपुषि स्त्रकीये सहेलमादर्शतलं विमृज्य। नेपथ्यलक्ष्म्याः परिभावनार्थमदर्शयज्जीवितवल्लभां सः। कुमार० ६।२८**] **३—मणिसनाभौ मुकुरस्य मण्डले बभौ निजस्य प्रतिविम्बदर्शिनी॥**]

प्रसाधन—नेपथ्य, मण्डल, प्रतिकर्म, वेशविधि, विभ्रम, वैशेषिक ये सब शरीरके श्रृङ्गारके नाम हैं। इनका विशेष उल्लेख संस्कृत काव्योंमें मिलता है। ये प्रसाधन सब देशोंमें और सभी समयोंमें विभिन्न रूपोंमें थे और अब भी नवीन रूपमें विद्यमान हैं।

तीसरा अध्याय

प्रसाधन द्रव्य और उनका उपयोग

केश प्रसाधन

लम्बे, आगेसे घुँघरीले, काले, पतले और कोमल बालोंकी प्रशंसा की गई है। इनकी जड़ें मजबूत होनी चाहिएँ। बाल अलग-अलग एक मूलसे एक ही निकलना चाहिए। [१. एकैकजाः—चरक०; २. पृथक् पृथक् मूलरुहा समुद्गताः—बुद्धचरित० ८।५२]।[१] बालोंके काले रंग की उपमा भ्रमरोंके समूहके साथ दी गई है [अलिपटलनीलकुटिलामलकावलिमलिक सन्निधौ वहति—कुट्टिनी० ११०], इनके घुँघरालेपनकी उपमा धुँएके साथ दी जाती है [अयमेव दह्यमानस्मरनिर्गतधूमवर्त्तिकाकारः। चिकुरभरस्तव सुन्दरि कामिजनं किङ्करीकुर्वते ॥ कुट्टिनी०–४४]। संस्कृत साहित्यमें आया केशान्त शब्द भी प्रशस्त बालों का ही बोधक है [प्रशस्ताः केशाः केशान्तः; अन्तशब्दोऽत्र प्रशंसावचनः, यथा—"धूपेन संत्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम्"—कुमार० ७।१४]। भगवान् बुद्धके बत्तीस लक्षणोंमें उनके बाल—ऊर्ध्वाग्र, नीले अंजनवर्ण, घुँघराले और दाहिनी ओर झुके बताये हैं।

बालोंको सुन्दर बनानेके लिए तैल लगाया जाता था, या नहीं, यह

---

१. स्निग्धा घनाः कुञ्चितनीलवर्णाः केशाः प्रशस्तास्तरुणीजनानाम्।
ततः केशान् समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्राननिन्दितान् ॥—अनंगरंग ६।३७
कृष्णान् सूक्ष्मान् मृदून् दीर्घान् समुदग्रथ्य शुचिस्मिता ॥
—महा विराट ४.

काव्योंसे स्पष्ट नहीं होता। बादमें तैल लगाने की प्रथाका प्रमाण स्फुट वचनोंमें मिलता है।[1] बालोंको काला, कोमल और स्निग्ध बनानेके लिए अगरुका धूप और आमलकका उपयोग होता था। आमलकके उपयोगका उल्लेख नलचम्पूमें है। [**समकरोत्क्षिप्तामलकाः, काश्चिन्मलयाचलभूमय इवोत्कृष्टगन्धधारितैलाः—३ रा०**]। तैलका उपयोग शरीरके अभ्यासके लिए है। कादम्बरीमें भी आँवलेके चूर्णका ही उल्लेख है। [**वारविलासिनी-करमृदितसुगन्धामलकालिप्तशिरसो—शूद्रकवर्णन**]। अगरुका उल्लेख प्रायः सभी काव्योंमें पर्य्याप्त रूपसे मिलता है।

अगुरु

अगरुका अर्थ है जो गुरु भारी न हो। यह भी इस द्रव्यके सर्वथा विपरीत है। अगरुका काष्ठ भारी होता है। भारी होना ही इसका गुण है। अगरु सुगन्धित होता है। चन्दनकी श्रेणी होनेके कारण इसका उपयोग आलेपनमें सुगन्ध लानेके लिए होता है। धूमके रूपमें इसका व्यवहार

एकैकजा मृदवोऽल्पाः स्निग्धाः शुद्धमूलाः कृष्णाः केशाः प्रशस्यन्ते॥
—चरक. शा. अ, ८।५५

केशान्चितान्तघननीलविकुञ्चिताग्रानापूरयन्ति वनिता नवमालतीभिः॥

१. तेल लगानेकी प्रथा शरीर पर तो थी, इसीसे पार्वतीके शरीर पर लगे तैलको लोध्र चूर्णसे साफ किया है।

—ऋतु० ३।१६।

"तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलमाश्यानकालेयकृताङ्गरागाम्"

—कुमार० ७।६।

पञ्चतन्त्र या दूसरे स्फुट वचनोंमें तैलका शिरमें प्रयोग कहा है; अन्य काव्योंमें मेरे देखनेमें नहीं आया।

शिरसि विधृता नित्यं स्नेहेन परिपालिता।
केशाः अपि विरज्यन्ते निःस्नेहा किं न सेवकाः। पञ्चतन्त्र; मित्रभेद.

दुर्गन्ध और जन्तुनाशक गुणके लिए किया जाता है। धुँआ ऐसी सूक्ष्म वस्तु है कि यह सूक्ष्मसे सूक्ष्म छेदमें या स्थानमें पहुँच जाती है। इसीलिए फेफड़ेमें छिपे कफको निकालनेके लिए अत्रिपुत्रने धूम ही बताया है। [**"लीनश्चेद् दोषशेषः स्याद् धूमैस्तं निर्हरेद् बुधः"—चरक चि० अ० ७।७७**]। बालोंके घने और लम्बे होने पर धुआँ ही एक ऐसा साधन था, जो शिरके पसीनेकी दुर्गन्ध, मैल, जूँ, लीक तथा दूसरे रोगोत्पादक सूक्ष्म जीवाणुओंको नष्ट कर सके। इसलिए बालोंको स्वस्थ-सुन्दर बनाये रखने तथा उनको काला-नीला-भ्रमरके रंगका बनानेके लिए बालोंमें धूम दिया जाता था। धूमके लिए मुख्यतः अगुरुका उल्लेख है। प्राचीन कालमें अगुरुके सिवाय दूसरी सुगन्धित वस्तुएँ भी बरती जाती रही होंगी। अत्रिपुत्रने वस्त्रोंके धूपके लिए—जौ, सरसों, अलसी, हींग,

---

ख. **शिरसि विधृतोऽपि नित्यं यत्नादपि सेवितो बहुस्नेहैः।**
कामिनी कच इव नीचः कौटिल्यं नैव विजहाति॥ स्फुट।

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें शिर पर प्रतिदिन तैल लगानेका विधान है।

"शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्"॥
नित्यं स्नेहार्द्रशिरसः शिरःशूलं न जायते।
न खालित्यं न पालित्यं न केशाः प्रपतन्ति च॥
बलं शिरःकपालानां विशेषेण विवर्धते।
दृढमूलाश्च दीर्घाश्च कृष्णाः केशा भवन्ति च॥
इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति सुत्वग्भवति चाननम्।
निद्रालाभः सुखं च स्यात् मूर्ध्नि तैलनिषेवणात्॥

—चरक० सू० अ ५।८१-८३

शिरपर तैलदान दैनिक प्रथा होनेसे सम्भवतः काव्योंमें इसका उल्लेख न हुआ हो। परन्तु तैलदान देना बालों के लिए आवश्यक है।

गुग्गुल, वच, चोरक, हरड़, गोलोमी, जटामांसी, अशोक, कूठ आदिका उल्लेख किया है। [चरक, शा० अ० ८।६५]

अगुरुके साथ देवदारका धुँआ भी दिया जा सकता है। अगुरुके गुण—

१. अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम् ।
लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत् ॥
कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति ॥ —भा० प्र०

२. रास्नागुरूणि शीतापनयनप्रलेपानाम्-श्रेष्ठतमः ॥
—चरक० सू० अ० २५

३. अगुरु···सारस्नेहास्तिक्तकटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः—
कृमिकुष्टानिलहराश्च—सु० सू० अ० ४५,

अगुरु—उष्ण-कटु, त्वचाके लिए हितकारी, तिक्त, तीक्ष्ण, पित्तकारक, लघु, कान और आँखके रोगोंको नष्ट करनेवाला, शीत, वात और कफ-नाशक है। काला अगुरु गुणोंमें अधिक सम्पन्न है।[1] [इसीसे कालिदासने कहा है 'अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव' —रघुवंश]। उत्तम अगुरु पानीमें डूबता है। रास्ना और अगुरू शीत नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है। अगुरुके काष्ठका तैल [इत्र] तिक्त, कटु, कषाय, दुष्ट व्रण शोधक, कृमि, कुष्ठ, कफ और वायुका नाशक है। अगुरुमें इतने अधिक गुण होनेसे ही इसका धुआँ बालोंमें दिया जाता था—

"शिरांसि कालागुरुधूपितानि कुर्वन्ति नार्यः सुरतोत्सवाय"
—ऋतु. ४.१५.

---

१. "अगुरुसुरभिधूपामोदितं केशपाशं
गलितकुसुममालं तन्वती कुञ्चिताग्रम्"—
—ऋतु० ५।१२

"जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कार धूपैः"

—पूर्वमेघ० ।३५.

अगुरुका बालोंके लिए विशेष महत्त्व है—

कालागुरु कटुकोष्णं केशानां वर्धनं च वर्ण्यं च ।
अपनयति केशदोषानातनुते सततं च सौगन्ध्यम् ।।

—धन्वन्तरि निघण्टु

बालोंके दोषोंको दूर करनेके लिए अगुरु उत्तम है। यह केशोंमें सुगन्धि पैदा करता है। अगुरु और कालीयक चन्दन प्रायः आपस में मिलते हैं। इसलिए अगरुके साथ 'काला' विशेषण दिया जाने लगा, यही काला अगरु श्रेष्ठ होता है। यह भारी भी होता है। [१–कालागुरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्ग्यः—ऋतु० २।२१ ; २–कुंकुमेनानुदिग्धाङ्गोऽगुरुणा गुरुणाऽपि वा—संग्रह०] ।

बाल काले होने पर ही सुन्दर लगते हैं—

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलैरपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः ।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः ॥

—किराता० ८।४७

अतिबहुलतिमिरपटलान्धकारः कुसुमरहितः केशपाशः

—कादम्बरी विलासवती वर्णन

अलिकुलनीलकुटिलकुन्तलनिकरविकटमौलिः

—कादम्बरी-पुण्डरीकवर्णन

धूम देनेकी विधि

बालोंको धोकर उनके गीला रहनेपर ही धूम दिया जाता था। सूख

जानेपर धूम देनेसे बाल टूट जाते हैं[1]। धूम देनेसे बाल सूख भी जाते हैं [धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तःकुसुमं तदीयम्—कुमार० ७।१४]। बालोंमें धूम इस मात्रामें दिया जाता था कि बाल सूख जायँ परन्तु अधिक रूक्ष होकर टूटने न लगें। बालोंके सूखनेपर इनमें तैल लगाया जाता था। प्राचीन कालमें राजमहिषियोंके लिए "असूर्यंपश्या"—'सूर्यको न देखनेवाली' विशेषण आया है। उनके बालोंको सुखानेके लिए धूम एक आवश्यक वस्तु थी। इससे बाल केवल सूखते ही नहीं थे अपितु उनमें सौरभ और कृष्णता भी आती थी इसीलिए इस प्रथाका काव्योंमें उल्लेख मिलता है।

धूम देनेके लिए 'धूमयंत्र' का उपयोग होता था। धूमयन्त्र बहुत साधारण विधिसे बनता था। मिट्टीके एक शरावेमें—पात्रमें अङ्गारे रखकर [जब धुआँ न निकलता हो] उसके ऊपर औषध डालते हैं, इसको दूसरे शरावे-पात्रसे ढाँप देते हैं। ऊपरके शरावेमें पाँच-सात-दस छेद रहते हैं। जिसमेंसे धुआँ बाहर आता है।[2]

---

१. कुण्ठत्वमायान्ति गुणाः कवीनां साहित्यविद्याश्रमवर्जितेषु।
कुर्यादनार्द्रेषु किमङ्गनानां केशेषु कृष्णागुरुधूपवासः॥

—विक्रमाङ्क १।८

२. चूर्णं गुलिकां वा निर्धूमदीप्तस्थिराङ्गपूर्णे सुसंस्थिते शरावे प्रक्षिप्यान्येन मूर्ध्नि प्रवृत्तबुध्नवृत्तच्छिद्रेण शरावेणापिधाय निधाय च तत्र स्रोतसि नेत्रं मुखेनैव धूमं पिबेत्॥ तद्वच्च व्रणमपि धूपयेत् वैशद्याय क्लेदवेदनोपशमाय च॥ संग्रह

इसमें विधि यही है, केवल नाड़ीका उपयोग नहीं होता, क्योंकि मुखसे धूम पीना नहीं।

औषधिमें काला अगुरु मुख्य है इसके साथ दूसरे सुगन्धित द्रव्य—कालीयक, देवदरु, भद्रमुस्ता, चोरक, आमलकी, वच, कूठ, पुष्करमूल, राल, मस्तंगी, शैलेयक आदि वस्तुएँ भी रुचि और सुविधाके अनुसार व्यवहारमें लायी जा सकती हैं। काव्योंमें केवल अगुरुका ही उल्लेख मिलता है। अगुरुका बारीक बुरादा या पतली लकड़ियाँ इस यन्त्रमें रखे अङ्गारोंपर डाल दी जाती थीं। अगुरुमें तैल रहनेसे इसके धूममें रूक्षता और आँखों में जलन होना आदि शिकायतें नहीं होतीं। कालीयक जो अगरुकी ही श्रेणीका है, उसमें भी यही गुण है। सम्भवतः केशोंमें तैलकी जरूरत इसके धूमसे पूरी होती होगी।

धूम लेनेके लिए स्त्रीको ऊँचे पीढ़े या ऊँची चौकीपर बैठना चाहिए। चौकीकी ऊँचाई इतनी होनी चाहिए कि बालोंकी लटें माथेके सामने आकर धूमयन्त्रसे तीन या चार इञ्च दूरीपर रहें। धुआँ सीधा बालोंकी जड़में, शिरकी त्वचा तक पहुँचना चाहिए। सुभीतेके लिए बालों के चारों ओर तौलिया या कोई दूसरा वस्त्र घेरा जा सकता है। यह धुआँ सामान्यतः आँखोंको नहीं छूता, न उनको कुछ हानि ही पहुँचाता है। आवश्यकताके अनुसार आँखोंको बन्द रख सकते हैं या इनमें घीमें बनाया काजल लगाया जा सकता है।

दूसरी विधि सरल है। इसमें ऊपरके शरावेके एक छेदमें नाड़ी लगाकर उसका धूम दूसरा व्यक्ति शिरके बालोंमें पीछेसे देता है। अत्रि पुत्रने इसको नाड़ी स्वेद नाम दिया है। कासरोगमें मुखसे इस प्रकारका धूम पीनेका विधान है।[1] नाड़ी द्वारा सिरके बालोंमें दूसरा व्यक्ति अच्छी

---

१. दशांगुलोन्मितां नाडीमथवाऽष्टांगुलोन्मिताम्।
शरावसंपुटच्छिद्रे कृत्वा जिह्मां विचक्षणः॥

—अ. १८।६६.

प्रकार धूम दे सकता है। इससे बालोंकी नमी सूखती है। उनमें सौरभ आती है, और बालोंको हानि पहुँचानेवाले सूक्ष्म जीवाणु—जूँ आदि भी नष्ट होते हैं। ये गुण अगुरुमें हैं। इसीसे मुख्य रूपसे उसका ही काव्यों में उल्लेख मिलता है।

पुष्प

बालोंका सौन्दर्य बढ़ानेके लिए भिन्न-भिन्न पुष्पोंका वेणीके रूपमें अथवा स्वतन्त्र ढंगसे उपयोग होता रहा है। जिस ऋतुमें जो पुष्प खिलते थे, नायिका उस ऋतुमें उन्हीं फूलोंसे केशशृङ्गार करती थी। इस प्रकार चित्र-विचित्र फूलोंसे सजाये केशपाशको कालिदासने कुसुमोत्खचित कहा है [**कुसुमोत्खचितान् वलिभृतश्चलयन् भृङ्गरुचस्तवालकान्—रघु० ८।५३**]। प्रायः एक ही प्रकारके फूल गूंथे जाते थे। यथा—

(१) **अलके बालकुन्दानुविद्धम्** —**उत्तर मेघ २.**

(२) **चूड़ापाशे नवकुरवकं चारुकर्णे शिरीषं**
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ **उत्तर मेघ २.**

(३) **गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः** — **उत्तर मेघ ११.**

(४) **"पर्याक्षिपत् काचिदुदारबन्धं दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना"**
—**कुमार. ७।१४**

कभी-कभी एक फूल न लगाकर उसके स्थानपर विभिन्न पुष्पराशिके बने माल्यसे केशपाश सजाया जाता था। [**सपदिगतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः—रघु० ९।६७**]। दूबके अँकुये मंगलार्थ केशपाशमें लगाये जाते थे। [**पवित्रदूर्वाङ्कुरलाञ्छितालका—विक्रमो० ३।१२**]; जूहीके फूलोंसे अपने बालोंको गूँथनेवाली नायिकाको यूथिका शबलकेशी कहा है [**मदकलयुवति शशिकला गजयूथपयूथिकाशबलकेशी—विक्रमो० ४।४६।**]

बालोंमें फूल लगानेके पश्चात् उन्हें किसी डोरेसे बाँध दिया जाता था। कालिदासने दूबकी टहनीमें गूँथे महुएकी मालासे नायिकाके केशपाश के बाँधनेका उल्लेख किया है। [**पर्याक्षिपत् काचिदुदारबन्धं दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना—कुमार० ७।१४**]। इस प्रकार बँधे बालोंको कविने उदार-बन्ध कहा है। जिस सूत्रसे बाल बाँधे जाते थे उसे वेस्टन कहते थे **आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्याः कयाचिदुद्वेष्टनवान्तमाल्यः—कुमार० ७।५**]; धम्मिल्ल—बँधे हुए केशपाशोंमें कभी कभी मणियाँ भी गूँथी जाती थीं [**मुक्ताजालग्रथितमलकम्—मेघ १।६३**] इस प्रकारके केश-प्रसाधनको कालिदासने अलकसंयमन कहा है [**अलकसंयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनदिङ्मुखम्—विक्रमो० ३।६**][1]

सौभाग्यवती स्त्रियाँ प्रसन्नताके समय केशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके सुगन्धित पुष्प प्रसाधनके लिए लगाती थी। दुःखके समय अन्य प्रसाधनों की भाँति फूलोंका त्याग कर देती थी—

"अतिबहुलतिमिरपटलान्धकारः कुसुमरहितः केशपाशः" **—कादम्बरी.**

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ॥
—उत्तरमेघ ३४.

ये पुष्प प्रायः श्वेत, नीले और सुगन्धित होते हैं। काली केशराशिमें श्वेत पुष्प नील-निर्मल आकाशमें चन्द्रमाकी कान्तिकी भाँति चमकता है। वेणीके ऊपर पुष्पोंकी साजसज्जा सहज ही सबका ध्यान आकृष्ट करती है। इसीलिए केश प्रसाधनमें पुष्प एक विशेष महत्त्वकी वस्तु है। कविगुरु कालिदासने कहा है—

---

१. श्री जगन्नाथजी पाठकसे प्राप्त जानकारीके आधारपर।

(१) शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेतां
विकसितनवपुष्पैर्यूथिकाकुड्मलेन ।
विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां
रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः ॥ —ऋतु० २।२५.

(२) पुष्पावतंसी सुरभीकृतकेशपाशः ॥ —ऋतु० २।२२.

(३) रतिश्लथं ते कबरीकलापमंसावसक्तं विगलत्प्रसूनम् ।
सपारिजातोद्भवपुष्पमय्या स्रजा बबन्धामृतमूर्तिमौलिः ॥
—कुमार० ४।२१.

केश फूलोंके गुच्छोंसे महक रहे थे। बालोंमें जूहीकी नयी-नयी कलियाँ; मालती और मौलसरीके फूलोंकी माला गूँथीं हुई थी। प्राचीन युगमें यह प्रसाधनका एक विशिष्ट साधन था। आज भी यह आकर्षण और शोभा-वृद्धिका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। क्षेमेन्द्रने कहा है कि वेश्या मनुष्यका धन चूसकर उसी प्रकारसे छोड़ दे, जैसे मनुष्य गन्नेका रस चूसकर या सूखे फूलको बालोंसे निकालकर फेंक देते हैं।

निष्पीतसारं विरतोपकारं क्षुण्णेक्षुशुल्कं प्रतिमं त्यजेत्तम् ।
लब्धाधिवासक्षयकारिशुष्कं पुष्पं त्यजत्येव हि केशपाशः ॥
—समय मातृका ५।७८

इससे भी केशराशिमें पुष्पसज्जाकी प्राचीनताका पता चलता है।

माँग भरना

जिस प्रकार आजकल बालोंमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ सिन्दूरसे मांग भरती हैं, इसी प्रकार मांग भरनेका उल्लेख नैषधमें श्रीहर्षने भी किया है—

नलात् स्वनैश्वस्त्यमनाप्तुमानता नृपस्त्रियो भीममहोत्सवागताः ।
तदङ्घ्रिलाक्षामदधन्त मङ्गलं शिरःसु सिन्दूरमिव प्रियायुषे ॥
—नैषध० १५।५५

भीमके महोत्सवमें आये हुए राजाओंकी स्त्रियाँ नलके द्वारा अपना वैधव्य बचानेके लिए दमयन्तीको प्रणाम करती थीं। वे अपने पतियोंकी आयुके लिए माँगलिक सिन्दूरके समान दमयन्तीके चरणोंकी महावरको अपने सिरों पर लगाती थीं[1]।

कालिदासने सौभाग्य-चिह्नके रूपमें सिन्दूरसे माँग भरनेका वर्णन नहीं किया है। मस्तकपर तिलक लगानेका उल्लेख अवश्य कालिदासके काव्यमें मिलता है—

अथाङ्गुलिभ्यां हरितालमार्द्रं माङ्गल्यमादाय मनःशिलां च।
कर्णावसक्तामलदन्तपत्रं माता तदीयं मुखमुन्नमय्य॥
उमास्तनोद्भेदमनुप्रवृद्धो मनोरथो यः प्रथमं बभूव।
तमेव मेना दुहितुः कथंचिद् विवाहदीक्षातिलकं चकार॥

—कुमार० ७।२३-२४

पार्वतीकी माता मेनाने आकर पार्वतीका मुख ऊपर उठाया; जिसके दोनों ओर दोनों कानोंमें सुन्दर कर्णफूल झूल रहे थे। उस रूपको देखकर वे आनन्दसे बेसुध-सी हो गईं। फिर भी उन्होंने किसी प्रकार अपनी दो अँगुलियोंसे गीली हरताल और मङ्गलसूचक मैनसिल लेकर अपनी पुत्रीके माथेपर विवाहका सौभाग्य तिलक कर दिया।

माँग भरना सौभाग्यसूचक होनेके साथ ही साथ श्रीवृद्धिमें सहायक भी माना जाता था।

मस्तकपर तिलक

माथे पर तिलक मुख्यतः शोभा एवं मंगल कार्यके लिए ही किये जाते हैं। कामसूत्रमें वशीकरणके रूपमें जो तिलक कहे गये हैं इसका कारण

१. सिन्दूरका उल्लेख-किरातमें भी है—"सिन्दूरैः कृतरुचयः सहेमकक्ष्याः —किरात० ७।८

सौन्दर्य एवं आकर्षण ही है।[1] जिन द्रव्योंसे तिलक किया जाता था, वे मांगलिक एवं वर्ण्य होते थे—यथा गोरोचना, हरताल, मैनसिल। सौन्दर्यके लिए अभ्रक तथा अन्य वस्तुओंके भी तिलक किये जाते थे।

गोरोचन

गोरोचना गायके या अन्य पशुके पित्ताशयमें मिलती है। जिस प्रकार मनुष्यके पित्ताशयमें पित्त सूख जाता है, उसी प्रकारसे गायके शरीरमें भी पित्त सूखकर पथरीका रूप धारण कर लेता है [**यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः**—चरक० चि० २६।३६]। इसे मांगलिक द्रव्य माना गया है। प्रायः इसीका तिलक माथे पर किया जाता था। यथा—

अच्छश्रमजललुलितगोरोचनातिलकपत्रभंगम्''—कादम्बरी

धारयस्यनुपरचितगोरोचनाविन्दुतिलकामसंस्कृतालकिमलिकमेखलाम्
—कादम्बरी

आकपिलगोरोचनारचिततिलकतृतीयलोचनाम्
—कादम्बरी-चाण्डाल कन्या

''तीर्थमृदा गोरोचनया च रचिततिलकाः''–हर्षचरित, ३रा। तीर्थकी मिट्टी और गोरोचनासे प्रस्तुत तिलक सम्राट् हर्ष द्वारा लगाये जानेका वर्णन मिलता है।

---

१. यदि सहदेवी मूलग्रहणे संगृह्य रोचनापिष्टम्।
तत्कृततिलका नारी गुरुकुलमपि विकलतां नयति॥
..................रोचनया रचिततिलका।
नारी वशयति भुवनं न तत्र चित्रं किमप्यस्याः॥
—अनंगरंग

मनःशिला और हरताल

मनःशिला [मैनसिल] और हरताल ये दोनों सब्ज़ियेके समान हैं। इसीसे इनका उपयोग वर्ण्य-कान्तिके लिए होता है। प्राचीनकालमें माथे पर तिलक भी इसीलिए इनसे किया जाता था।

(१) शङ्कान्तरद्योति विलोचनं यदन्तर्निविष्टामलपिङ्गतारम्।
सानिध्यपक्षे हरितालमय्यास्तदेव जातं तिलकक्रियायाः॥
—कुमार० ७।३३

(२) अथाङ्गुलिभ्यां हरितालमार्द्रं माङ्गल्यमादाय मनःशिलां च।
....
तमेवमेना दुःहितुः कथंचिद् विवाहदीक्षातिलकं चकार॥
—कुमार० ७।२३-२४

(३) विधाय वन्धूकपयोजपूजने कृतां विधोर्गन्धफलीबलिश्रियम्।
निनिन्द लब्धाधरलोचनार्चनं मनःशिलाचित्रकमेत्य तन्मुखम्॥
—नैषध० १५।२८

(४) ललाटिकासीमनि चूर्णकुन्तला बभुः स्फुटं भीमनरेन्द्रजन्मनः।
मनःशिलाचित्रकदीपसम्भवा भ्रमीभृतः कज्जलधूमवल्लयः॥
—नैषध० १५।३३

अर्थात्—(१) शिवजीके माथेपर पीली पुतलीवाला जो चमकता हुआ नेत्र था वही हरतालका सुन्दर तिलक बन गया।

(२) मैनाने गीली हरताल और मैनसिलमें अंगुलियोंको भिगोकर पार्वतीके माथेपर तिलक लगा दिया।

(३) दमयन्तीके अधरों और लोचनोंसे सुन्दर बना मुख मैनसिलाका लाल माङ्गलिक तिलक प्राप्त करके दुपहरिया तथा नील कमल दोनोंसे पूजा करनेके बाद चम्पाकी कलीसे पूजित चन्द्रमाकी भी निन्दा करने लगा।

(४) माथेकी सीमापर आये हुए दमयन्तीके घुँघराले काले बाल, मैनसिला रूपी दीपकसे उत्पन्न काजलके धूमकी बलखाती हुई पंक्तिके समान शोभित हुए।

अभ्रक

तिलकके लिए श्वेत अभ्रकके चूरेका भी उपयोग किया जाता था। इस चूरेको माथेपर गोंद या मोमकी सहायतासे चिपकाया जाता था। यह क्रम ठीक उसी प्रकारका रहा होगा जिस प्रकार आजकल स्त्रियाँ प्लास्टिककी विन्दियाँ लगाती हैं।

चन्द्राभमाभ्रं तिलकं दधाना तद्भन्निजास्येन्दुकृतानुबिम्बम्।
सखिमुखे चन्द्रसमे ससर्ज चन्द्रानवस्थामिव कापि यत्र॥

—नैषध० ६।६२

एक सखीने अपने माथेपर अभ्रकका चन्द्रमाके समान तिलक लगाया। फिर उसने अपनी दूसरी सखीके चन्द्रतुल्य मुखपर वैसा ही तिलक लगाया जिससे उसके चन्द्र तिलकका उसमें प्रतिबिम्ब झलक पड़ा। इस तरहसे एक दूसरेके प्रतिबिम्बसे मानों चन्द्रमाकी दशा डाँवाडोल हो गई।[1]

सिद्धार्थ [श्वेत सरसों]

गौर सर्षप भी माङ्गलिक माना जाता है। अत्रिपुत्रने तथा कवि बाण ने सूतिका-गृहमें इनके बिखेरनेका उल्लेख किया है। [**चरक० शा० अ० ८, कादम्बरी सूतिकागृह वर्णन**]। सरसोंके माङ्गलिक होनेसे गोरोचना और मैनसिलकी भाँति इसका भी तिलक माथेपर किया जाता था।

---

१ आज भी कुंकुममें अभ्रकका चूरा मिलाकर तिलक किया जाता है। होलीके पर्वपर अबीर-गुलालमें अभ्रकका चूरा डालते हैं। अभ्रक माङ्गलिक, शोभा एवं सौन्दर्यका चिह्न है।

सिद्धार्थबीजदन्तुरललाटतिलकोपयुक्तताम्बूलः ।
श्रवणनिवेशितकुण्डलटिट्टिभकप्रायकन्धराभरणः ॥ कुट्टिनी० ७४०

श्वेत सरसोंको निष्तुष करके उनके बीजोंसे दन्तुर—उभरा हुआ तिलक माथेपर किये, पान खाते हुए, कानोंमें कुण्डल पहिने तथा ग्रीवाके आभूषणमें टिट्टिभके आकारका आभूषण शोभित हो रहा था।

भस्म

साधु लोग माथे पर भस्मका तिलक लगाते थे। कादम्बरीमें पुण्डरीकके वर्णनमें महाकवि बाणने कहा है—

"पुण्यपताकायमानया सरस्वतीसमागमोत्कण्ठाकृतचन्दनरेखयेव भस्मललाटिकया बालपुलिनलेखयेव गङ्गाप्रवाहमुद्भासमानम्।"

—कादम्बरी पुण्डरीक वर्णन।

पुण्डरीकके ललाटमें धर्मपताकाके समान एवं सरस्वतीके साथ समागम की उत्कंठासे की हुई चन्दनरेखाके समान, भस्मका तिलक लगा हुआ था जिससे वह क्षुद्र बालुकामय—पुलिन रेखा द्वारा गंगा प्रवाहके समान शोभित हो रहा था।

चन्दन

शीतलताकी दृष्टिसे अथवा शोभा-वृद्धिके लिए माथेपर चन्दनका भी तिलक लगाया जाता था। बाणने श्वेत चन्दनके तिलकका उल्लेख किया है। यथा—

'पर्य्युसितधूसरचन्दनरसतिलकालंकृतललाटपट्टया'

—कादम्बरी पत्रलेखवर्णन।

पहले दिन किए धूसर वर्ण चन्दनके तिलकसे पत्रलेखाका माथा शोभित था।

पत्रभंग रूपमें तिलक

शोभाके लिए कतिपय वृक्षोंके पत्ते ही काटकर माथेपर चिपका दिये जाते थे, जो तिलकके समान ही मुखमण्डलकी श्रीवृद्धि करते थे। यथा—

यस्यामुपवनवीथ्यां तमालपत्राणि युवतिवदने च।
नखप्रहाररणितं तंत्रीवाद्येषु सुरतकलहेषु॥ —कुट्टिनीमतम् १६

जिस वाराणसीके उपवनोंकी सड़कों पर तमालवृक्ष हैं और जिस वाराणसीमें युवतियोंके मुखपर तमालपत्रके तिलक शोभित हैं; वहाँपर नखोंका आघात तारके वाद्योंमें और सुरत कलहमें होता है।

तिलक शोभा-वृद्धि करता अवश्य है परन्तु जो स्त्रियाँ सहज सुन्दर हैं उनमें तिलक की जरूरत भारविको प्रतीत नहीं हुई। यथा—

कान्तानां कृतपुलकः स्तनांगरागे वक्त्रेषु च्युततिलकेषु मौक्तिकाभः।
संपेदे श्रमसलिलोद्गमो विभूषां रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति॥
—किराता० ७।५।

परिश्रमसे स्त्रियोंके स्तनोंमें रोमांच हो गया; माथेका तिलक धुल गया। मुखोंपर मोतीकी झलक आ गई; शरीरमें पसीनेकी बिन्दु दीखने लगे; इतना होनेपर भी उनकी सुन्दरतामें कोई अन्तर नहीं पड़ा, क्योंकि विकृति भी सुन्दर व्यक्तियों की शोभामें चार चाँद लगा देती है।

तिलक शृङ्गारका एक अङ्ग था, दूसरा अनेक प्रकारसे उसका प्रयोग होता था। स्नानोपरान्त तिलक धुल जाता था। तिलक मस्तक शोभावृद्धि का मुख्य अङ्ग माना जाता था—जैसा 'तिलक' नामसे स्पष्ट है।

स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो वध्वा इवाध्वंसितवर्णकान्तेः।
विशेषको वा विशिशेष यस्याः श्रियं त्रिलोकी तिलकः स एव॥
—माघ० ३।६३

जिस प्रकार तेलसे बनाये अञ्जन—काजलका श्यामल गोलाकार तिलक रमणी की कान्ति एवं वर्णकी शोभा नष्ट न करते हुए उसे और भी बढ़ा देता है, उसी प्रकार काजलके समान श्यामल वर्ण, सदाचारपरायण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं ही ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी मर्यादा को नष्ट न करने वाली द्वारिकापुरीकी शोभाको बढ़ा रहे थे।

भ्रुवोंका प्रसाधन

भ्रुवोंकी सुन्दरताके कारण ही स्त्रियोंके लिए नतभ्रु और सुभ्रु शब्दोंका प्रयोग किया गया है। [यथा—**नतभ्रुवां समुन्नतैः स्तनैः—विक्रमाङ्क २।२ मुखानि जाग्रन्मदनानि सुभ्रुवां—विक्रमांक २।५**]

भौंहें काली और कुटिल सौन्दर्यवर्द्धक मानी जाती हैं। शरीरमें भौंहों का उपयोग माथेसे टपकनेवाले पसीनेको आँखोंमें न आने देना तथा आँखों पर छाया रखना है। दूसरे लाभके विषयमें सन्देह हो सकता है। सौन्दर्य की दृष्टिसे काली भ्रू अच्छी मानी जाती है। काव्योंमें सर्वथा काली भौंहोंका ही उल्लेख मिलता है। यथा—

यान्तीनां सममसितभ्रुवां नतत्वा-
दसानां महति नितान्तमन्तरेऽपि। माघ० ८।२।

पँक्ति बाँधकर कालीभ्रुवों वाली स्त्रियोंके जाते हुए कन्धोंको झुकाकर चलने पर बहुत अन्तर था।

पौष्पं धनुः किं मदनस्य दाहे श्यामीभवत् केसरशेषमासीत्।
व्यधात् विधेशरतदपि क्रुधा किं भैर्माभ्रुवौ येन विधिर्व्यधत्त॥
—नैषध० ७।२४०।

कामदेवके दाहके समय उसका पुष्पोंका धनुष काला पड़ गया था। उसमें केवल केशर ही बाकी रह गयी थी। इसे क्रुद्ध शिवने दो भागोंमें विभक्त कर उनसे दमयन्तीकी दो भ्रुवें बनाईं।

कालिदासने तो भ्रुवोंके लिए **'शलाकाञ्जननिर्मितेव'** शब्दका प्रयोग पार्वतीके प्रसंगमें किया है [**कुमार० १।४७**]; इससे स्पष्ट है कि भौंहें काली ही श्रेष्ठ मानी जाती थीं। इनमें भी आँखोंकी भाँति काजल और अञ्जन लगाया जाता था। पलकोंके बाल तथा आँखके ऊपर भौंहोंका काला होना नेत्र शोभा और रक्षा दोनों ही दृष्टियोंसे आवश्यक [माना जाता है। इन दोनोंके काले रहनेसे प्रकाशसे आँखकी रक्षा होती है।

यही कारण है कि प्राचीन कालमें भ्रुवोंका प्रसाधन, मसी, काजल या अञ्जनसे किया जाता था और आज भी प्रकारान्तरसे वही पद्धति प्रचलित है। मसीसे इनको कुटिल चित्रित किया करते हैं।[1]

नेत्रोंका प्रसाधन

आँखोंके दो भाग हैं। एक कृष्ण भाग और दूसरा स्वच्छ या सफेद भाग। ये दोनों भाग चमकदार और बड़े होने चाहिए। आँखोंमें विशालता तभी आ सकती है जब पलकें हल्की और पूरी खुली रहें। आँखोंका सौन्दर्य उनके काले और श्वेत भागके स्पष्ट होने पर ही निर्भर करता है [**व्यक्त-भागे विभागे—चरक शा० अ० ४।५५**]; यह काम अञ्जनसे होता है। इस लिए आँखों की रक्षाके लिए अत्रिपुत्रने प्रतिदिन अञ्जन लगानेका विधान किया है।

> सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्।
> पंचरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थे रसांजनम्॥
> चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषाच्छ्लेष्मतो भयम्।
> ततः श्लेष्महरं कर्म हितं दृष्टेः प्रसादनम्॥
> दिवा तन्न प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम्।
> विरेकदुर्बला दृष्टिरादित्यं प्राप्य सीदति॥
> तस्मात् स्राव्यं निशायां तु ध्रुवमञ्जनमिष्यते॥
>
> —चरक० सू० अ० ५।१५-१७।

सुवीरा नदीमें उत्पन्न अंजन (काला सुरमा) आँखोंके लिए हितकारी है। इसको नित्यप्रति नेत्रोंमें लगाना चाहिए। पाँचवें या छठे दिन

---

१. प्रशस्तभ्रु—ईषत्प्रलम्बिन्यौ असंगते समे संहते महत्यौ भ्रुवौ।

—चरक० शा० अ० ८।५५।

रसांजनको आँखोंमें लगाना चाहिए।[1] नेत्र तेजोमय हैं, इसीलिए इन्हें श्लेष्मा-कफसे भय है। इसीलिए कफ़नाशक प्रयोग आँखोंके लिए हित-

कारी है। दिनके समय आँखोंमें तीक्ष्ण अंजन नहीं लगाना चाहिए क्योंकि अंजनके कारण पानी निकलनेसे निर्बल हुई दृष्टि सूर्यसे पीड़ित होती है। [शरीरमें सूर्यका प्रतिनिधि आँख है, परन्तु जिस प्रकारसे चाकू पत्थरपर ही घिसकर तेज किया जाता है और पत्थरपर ही लगानेसे कुंठित होता है, उसी प्रकार आँखको भी सूर्यसे ही क्षति होती है]। इसलिए स्रावण अंजन रात्रिमें आँखोंमें लगाना चाहिए। जिस प्रकार निर्मल आकाशमें चन्द्रमा चमकता है, उसी प्रकार अंजन-आश्च्योतन आदिसे निर्मल आँखोंमें दृष्टि चमकती है। आँखोंकी श्लेष्माको ही कम करनेके लिए धूमपानका भी विधान है। यथा—

तीक्ष्णाञ्जनेनाञ्जितलोचनस्य यः संप्रदुष्टो न निरेति नेत्रात्।
श्लेष्मा शिरःस्थः स तु पीतमात्रे धूमे प्रशान्तिं लभते क्षणेन ॥

—चक्रपाणि

---

१. विनयपिटकमें सुरमेके उपयोगके उल्लेख मिलते हैं। कुछ प्रसंग लीजिए—

उस समय एक भिक्षुको आँखका रोग था। इस कारण उसे अन्य भिक्षु पकड़कर शौचादिके लिए ले जाते थे। विहार भ्रमणमें भगवानने उस भिक्षुको पकड़कर ले जाये जाते देखा। वे भिक्षुके निकट गये। उन्होंने पूछा—

भिक्षुओ ! इस भिक्षुको क्या रोग है ?

भन्ते ! इस आयुष्मान्‌को आँखका रोग है। इन्हें हम पकड़कर शौचादिके लिए ले जाते हैं।

तब भगवान्‌ने इसी सम्बन्धमें भिक्षुओंको सम्बोधित करते हुए कहा—

भिक्षुओ मैं अञ्जनकी अनुमति देता हूँ [जैसे]—काला अञ्जन, रस-अञ्जन, स्रोत अञ्जन [नदीकी धारामें मिला]; गेरू काजल। आयुर्वेदमें अञ्जन पाँच प्रकारके हैं—नीलाञ्जन, स्रोताञ्जन, रसाञ्जन, पुष्पाञ्जन—जस्तेका फूल और सौवीराञ्जन—सुवीरा नदीसे उत्पन्न—लेखक।

२. अञ्जनके साथ पीसनेके सामानकी अपेक्षा थी। भगवान्‌ने यह बात भी कही—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—चन्दन, तगर, कालानुसारी, तालीस, भद्रमुस्ताकी जड़।

३. उस समय भिक्षु पिसे हुए अञ्जनको कटोरेमें रख छोड़ते थे। पुरवोंमें रख छोड़नेके कारण उनमें तिनका, धूल आदि पड़ जाती थी। इसे जानकर भगवान्‌ने कहा—

भिक्षुओ अनुमति देता हूँ—अंजनदानी की।

४. उस समय षड्‌वर्गीय भिक्षु सुनहली, रुपहली आदि नाना प्रकारकी अञ्जनदानियोंको धारण करते थे। इससे लोग कामभोगी गृहस्थ हैरान होते थे। इस पर भगवान्‌से यह बात कही—

भिक्षुओ, नाना प्रकारकी अञ्जनदानियोंको नहीं धारण करना चाहिए। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी की, (हाथी) दाँत की, सींग की, नरकट की, बाँस की, काठ की, लाख की, फलकी, तांबे की (लोहे की), शंख की [अंजनदानियोंके रखनेकी।]

५. उस समय अंजन दानियाँ खुली होती थीं जिससे उनमें तिनका धूल पड़ जाती थी। भगवान्‌से यह बात कही—भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ढक्कन की।

स्पष्टतः अंजन और सुरमेके उपयोगमें सौन्दर्य प्रसाधनके साथ ही साथ शरीर एवं स्वास्थ्य रक्षाका भी ध्येय रहा है। अंजनका उपयोग बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित रहा है। सुमेरियन लोग प्राचीन कालसे आँखमें सुरमा लगाते थे। मिस्रमें सुरमा पलकोंके बालोंपर—पलकोंमें लगाया जाता था। सुरमेको पत्थरके खरलोंमें पीसा जाता था। इसे सुरमेदानियोंमें रखा जाता था। सुरमेदानी-शीशे, हाथीदाँत, अस्थि, लकड़ी, पत्थर आदिकी बनती थी। अंजन लगानेके लिए सलाइयोंका उपयोग होता था।

सिन्धु सभ्यताके अवशेषोंमें सुरमेदानी और सलाइयाँ मिलती हैं। सुरमोंका प्रयोग आँखकी शोभा बढ़ाने, सूर्यकी प्रखर किरणोंसे रक्षाके लिए आँखोंको सूक्ष्म रोगोत्पादक जीवाणुओं आदिसे बचानेके लिए किया जाता था।

आयुर्वेद में अंजनके चार भेद बताये गये हैं—लेखन, रोपण, स्नेहन और प्रसादन। इनमें मधुर रसको छोड़कर शेष पाँच रसोंसे [अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषायसे] लेखन अंजन बनता है। तिक्त और कषाय रसको स्नेहके साथ मिलाकर रोपण अंजन बनाते हैं।

---

६. उस समय भिक्षु उँगलीसे अंजन आँजते थे जिससे आँखें दुखती थीं। भगवान्से यह बात कही—भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ—आँजनेकी सलाईके उपयोग की।

७. उस समय आञ्जनेकी सलाइयाँ जमीनपर गिर जाती थीं और सदोष हो जाती थीं। इस पर भगवान्से यह बात कही—भिक्षुओ अनुमति देता हूँ सलाईदानी की।

८. उस समय भिक्षु अञ्जनदानी और आंजने की सलाईको हाथमें रखते थे। भगवान्ने यह बात कही–भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अञ्जन-दानीके बटुएकी।

अंजन रखने की अंजनदानी[1]—मधुर अंजनके लिए सुवर्णकी; अम्लके लिए चाँदीकी; लवणके लिए मेढ़ेके सींगकी, तिक्त रसके लिए काँसे की, कटु रसके लिए बिल्लोर या पत्थर की तथा कषाय रसके लिए ताम्र या लौह की अंजनदानी बनती थी। शीतल अंजनके लिए—नड़सर, पिलखन,

---

१. तत्तु लेखनं रोपणं स्नेहनं प्रसादनमिति चतुर्विधम् भवति ।
तत्राम्लादिभिः रसैः पञ्चभिः शुक्रार्मादिषु लेखनम् ।
तिक्तकषायैः सस्नेहैरभिष्यन्देषु रोपणम् ।
सर्पादिवसादिभिर्वाततिमिरादिषुः स्नेहनम् ।
स्वादुशीतैः सस्नेहैरभिष्यन्दान्ते सूर्योपरागाशनिविद्युत्सम्पात—
भूत पिशाचाद्यद्भुत दर्शनाद्युपहतायांदृष्टौ स्वस्थवृत्ते च प्रसादनम् ।
पात्रे तु कुर्यात्सौवर्णे मधुरम् । राजतेऽम्लम् । मेषशृङ्गमयेलवणम् । कांस्येतिक्तम् । वैडूर्यमयेऽश्ममये वा कटुकम् । ताम्रमये आयसे वा कषायम् । नलप्लक्षपद्मकस्फटिकशंखान्यतमे शीतम् । एवमव्यापन्नं गुणं भवति । वर्त्तिघर्षणार्थं च शिला श्लक्ष्णा निम्नमध्यानुकारिणी पञ्चांगुलायता ऽयंगुलविस्तीर्णा ।

शलाकापञ्च—कनकरजतताम्रलोहोद्भवा अङ्गुली च । तत्राद्ये प्रसादनेऽञ्जने स्नेहने च । मध्यमालेखने । अन्त्ये रोपणे । मृदुत्वादङ्गुल्येव प्रधानम् । अन्त्या सरुजेऽक्षिण सैव प्रयोज्या । शेषा दशांगुला राजमाषस्थूलाः सुश्लक्ष्णाः तनुमध्या मुखयोर्मुकुलाकारा कलाय परिमण्डलाश्च ।
—संग्रह० सूत्र ३२ ।

अंजनके विषयमें डा० मोतीचन्द्रजीके लेख 'कोसमैटिक्स इन एनसीएण्ट इण्डिया' से सहायता ली है ।

लकड़ीकी शलाका तथा फलपात्रको अंजनदानीके रूपमें बरतनेका उल्लेख कादम्बरीमें जरद्द्रविड् धार्मिकके वर्णनमें बाणने किया है; यथा—

पद्माख, स्फटिक, शंखमेंसे किसीकी अंजनदानी बनती थी। इनमें रखा अंजन बिगड़ता नहीं था। अंजनको घिसनेके लिए पत्थरकी चिकनी शिला चाहिए, जो बीचमें थोड़ी-सो गहरी हो। इसकी लम्बाई पाँच अंगुल और चौड़ाई तीन अंगुल होनी चाहिए।

आँखमें सुरमा लगानेके लिए सलाई स्वर्ण, रजत, ताम्र और लोहेकी बनती थी। अंगुलीसे भी सलाईका काम लिया जाता है। स्वर्ण और रजतकी सलाई प्रसादन और स्नेहन अञ्जनमें बरती जाती है। ताम्रकी सलाई लेखनमें और लोहेकी रोपणकार्यमें आती है। कोमल होनेसे इन सभीमें अंगुलीकी ही प्रधानता है। दुखती आँखमें इसीका उपयोग करना चाहिए। ग्रामोंमें आज भी वृद्ध व्यक्ति अगुलीसे ही जस्तेका फुल्ला— जस्ता आँखमें आँजते हैं।

सलाई दस अंगुल लम्बी, राजमापके समान मोटी, चिकनी, बीचमेंसे पतली, शिरोंपर गोल [डोडीके आकारकी], मटरके समान मोटी होनी चाहिए।

अञ्जन

अञ्जन नाम एण्टीमनी तथा सीसक (लैड) के समासोंके लिए प्रायः आता है। रसशास्त्रमें अञ्जन पाँच प्रकारका बताया है, यथा— नीलाञ्जन, स्रोताञ्जन, रसाञ्जन, पुष्पाञ्जन और सौवीराञ्जन।[1] इनमें

[क] "कुब्जादिदत्तसिद्धांजनदानस्फुटितैकलोचनतयात्रिकालमितर-लोचनाञ्जनदानादरश्लक्ष्णीकृत दारुशलाकेन"

[ख] इंगुदीकोपकृतौषधाञ्जनसंग्रहेण" —कादम्बरी.

१. स्रोतोञ्जनं च सौवीरमञ्जनं च रसाञ्जनम्।
नीलाञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनकमेव च॥
स्रोतोञ्जनं स्मृतं स्वादु चक्षुष्यं कफपित्तनुत्।
कषायं लेखनं स्निग्धं ग्राही छर्दिविषापहम्॥

नीलाञ्जनका सम्बन्ध एण्टीमनीसे, सौवीराञ्जनका सीसकसे और पुष्पाञ्जन का जस्तेसे है। प्रायः एण्टीमनी और सीसकके ही अञ्जनका व्यवहार होता है। एण्टीमनीका सुरमा पीसनेमें थोड़ा कठिन होता है, सीसकका सुरमा सरलतासे पिसता है और थोड़ा अधिक काले रंगका होता है। सुरमेको बारीक घिसकर या पीसकर महीन रेशममेंसे छाना जाता है, जिससे आँखमें न लगे। इस सुरमेको भिन्न-भिन्न आकारकी अञ्जनदानियोंमें रखते हैं, जिसमें कि सलाईका काम कभी-कभी इनके ढक्कनमें लगी सलाईसे ही ले लिया जाता है, अन्यथा अलगसे ही सलाई रखते हैं।

इस सुरमेमें दूसरी भी ठण्डी वस्तुएँ मिलाते हैं। अञ्जनको गरम करके त्रिफलाके क्वाथमें या भाँगरेके रसमें दो या तीन बार बुझाते हैं। इससे यह नरम और टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। फिर इसको बारीक पीसते हैं, इसमें चमेलीकी कलियाँ सुखाकर पीस लेते थे [अंजनके विषयमें अष्टांग संग्रहका सूत्र० अ० ८।९४–१०१ देखना चाहिए]।

अञ्जन या सुरमा महीन होनेसे ही आँखोंमें चिपकता है, मोटा रहनेसे रगड़ता है और गिर जाता है। इसलिए इसको रेशममेंसे छानना चाहिए। अञ्जन लगानेपर आँखमें लाभ होनेके साथ शोभाकी भी वृद्धि होती है।

अञ्जन लगानेका उल्लेख प्रायः संस्कृत-साहित्यमें बहुत है, यथा—

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन सम्भाव्य तद्वञ्चितवामनेत्रा।
तथैव वातायनसन्निकर्षं ययौ शलाकामपरावहन्ती॥

—कुमार० ७।५९

हिध्माक्षयास्रहृत् शीतं सौवीरमपि तादृशम्।
द्वयोरञ्जनयोः किन्तु श्रेष्ठं स्रोतोञ्जनं स्मृतम्॥

—आयुर्वेद प्रकाश.

एक स्त्रीने अपनी एक आँखमें तो काजल लगा लिया था परन्तु दूसरी आँखमें बिना काजल लगाये हाथमें सलाई लिए हुए ही खिड़कीकी ओर भागी।

भालेक्षणाग्नौ स्वयमञ्जनं स भङ्क्त्वादृशोः साधु निवेश्य तस्याः।
नवोत्पलाक्ष्याः पुलकोपगूढे कण्ठे विनीलेऽङ्गुलिमुञ्जघर्ष॥

—कुमार० ६।२६

शिवजीने अपने ललाटमें जलनेवाले नेत्रसे स्वयं काजल पारकर नये कमल जैसी आँखोंवाली पार्वतीजीके नयनोंमें काजल लगा दिया और फिर अंगुलीमें लगा हुआ अंजन पोंछनेके लिए अंगुलीको अपने नीले कण्ठमें रगड़ लिया।

अंजनसे आँखकी शोभा बढ़ती है, यथा—**"एकशलाकांजनजनित-लोचनरुचिः—हर्षचरित ३रा उच्छ्वास।**

काजल

काजलको तेलसे पारते हैं। मिट्टीके एक बर्त्तनमें सरसोंका तेल रख कर रूईकी बत्ती इसमें डालकर ऊपर एक नया मिट्टीका सकोरा लौसे कुछ ऊँचाईपर रख देते हैं। बत्ती जलनेपर धुआँ ऊपरके सकोरेमें लग जाता है। इसे धीमेसे अलग झाड़ लेते हैं।

इसको बनानेकी कई विधियाँ हैं। काजलको सूखा भी लगाते हैं और थोड़ेसे घीमें मिलाकर भी आँखमें आँजते हैं। बत्तीमें छायामें सूखे चमेली के सूखे फूल, कपूर, रसौंत भी रख देते हैं। इसका बना काजल ठण्डा होता है। अंजनसे अधिक कालिमा काजलमें है। प्रायः बच्चोंकी आँखोंमें काजल ही आँजा जाता है। काजल अंगुलीसे ही लगता है। अंगुलीपर काजल न अधिक और न कम लगाना चाहिए। अधिक लगे काजलको

फूँकसे उड़ा देना चाहिए। युवा और वृद्ध व्यक्तियोंकी आँखोंमें अंजन आँजा जाता है।

वाससितं स्वेदजलं कज्जलमलिनाश्रुवारिणा मिश्रम्।
कुचतटपतितं तस्याः प्रयागसम्भेदसलिलमनुकुरुते॥

—कुट्टनीमतम् २१८

नायिकाके शरीरमें रहनेसे श्वेत [क्योंकि नायिकाके अंग गौर वर्ण हैं], माथेसे टपका जल—स्वेद विन्दु आँखोंमें लगे काजलसे मिलकर जब स्तनोंके किनारेपर आकर मिलता है तब प्रयागमें मिलनेवाली गंगा-यमुनाके दृश्यकी शोभा प्रकट होती है।

अपांगमालिङ्ग्य तदीयमुच्चकैरदीपिरेखाजनिताञ्जनेन या।
अपातिसूत्रं तदिव द्वितीयया वयःश्रिया वर्धयितुं विलोचने॥
अनङ्गलीलाभिरपाङ्गधाविनः कनीनिकानीलमणेः पुनः पुनः।
तमिस्रवंशप्रभवेन रश्मिना स्वपद्धतिः सा किमरञ्जिताञ्जनैः॥

—नैषध १५।३४-३५

काजलसे उत्पन्न रेखाने दमयन्तीके अपांगका स्पर्श करके अतिशय शोभाको धारण किया। ऐसा प्रतीत होता था कि दमयन्तीकी तारुण्य-लक्ष्मी ने नेत्रको बढ़ानेके लिए डोरा डाला है। यह रेखा काजलकी नहीं थी; अपितु—कटाक्ष-विक्षेप रूप कामविलासोंसे बार-बार अपांगका स्पर्श करने-वाली पुतली रूपी नीलमकी अतिशय काली किरणोंने अपने जानेका मार्ग रँगा हुआ था।

स्थगिताम्बरक्षितितले परितस्तिमिरे जनस्य दृशमन्धयसि।
दधिरे रसाञ्जनमपूर्वमतः प्रियवेश्मवर्त्म सुदृशो ददृशुः॥

—माघ ९।२१

अन्धकारसे आकाश और पृथ्वी भर गई थी, मनुष्यको कुछ भी दीखता नहीं था। इस समय प्रियके घरका रास्ता देखनेके लिए आँखोंमें रसाञ्जन—रस, प्रेमरसका अंजन लगाया था।[1]

नलिनं मलिनं विवृण्वति पृषतीमस्पृशति तदीक्षणे।
अपि खञ्जनमञ्जनाञ्चिते विदधाते रुचिगर्वदुर्विधाम्॥

—नैषध २।३

'दमयन्तीकी जिस आँखमें अञ्जन नहीं लगा हुआ था उससे तो कमल भी मलिन हो रहा था। जिस आँखमें अञ्जन आँजा हुआ था उससे खञ्जनमें भी अपनी कान्तिका मद नहीं रहा था।

तस्याः सुजातोत्पलपत्रकान्ते प्रसाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य।
न चक्षुषोः कान्तिविशेषबुद्ध्या कालाञ्जनं मंगलमित्युपात्तम्॥

—कुमार० ७।२०

शृङ्गार करनेवाली स्त्रीने पार्वतीकी नीले कमल जैसी बड़ी बड़ी और काली आँखोंमें जो काजल लगाया वह केवल मंगल चिह्नके रूपमें ही था, आँखोंकी शोभा बढ़ानेका कोई प्रश्न ही नहीं था।

कपोलका प्रसाधन

कपोलका प्रसाधन कई रूपोंमें होता था, कपोल पर चित्रकर्म, पत्रभंग, लोध्ररजका उपयोग प्रायः होता था। गालोंको अनेक प्रकारकी श्वेत-रक्त चन्दनकी बुन्दकियोंसे सजाया जाता था। चिबुकके कूपसे दो रेखाएँ ऊपर

---

१. रसांजन—दार्वीक्वाथमजाक्षीर पादपक्कं यदा घनम्।
तदा रसाञ्जनख्यातं नेत्रयोः परमंहितम्॥
तार्क्ष्यं तार्क्ष्यशैलं च रसगर्भं रसाञ्जनम्॥
रसाञ्जनं कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत्।
उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत्॥

—आयुर्वेद प्र०

गालोंपर कानोंकी ओर खींच दी जाती थीं। इन पर लताकी भाँति टहनियाँ और पत्तियाँ बना दी जाती थीं। इसी प्रकार ललाटके ऊपर केशरेखाके किनारे सफेद-लाल बुन्दकियाँ डाली जाती थीं। अधिकतर ये दोनों ओर कान तक फिर नीचे भ्रुवोंके ऊपर और दोनों तरफ रेखायें आँखोंकी कोरोंके ऊपर मिला दी जाती थीं। इन्हीं बुन्दकियोंसे जब तिलक करते थे, तो इसको भक्ति कहते थे। भक्तिके रूपमें ललाटके बीचोबीच चारों ओर वृत्ताकार दौड़ती चन्दनकी श्वेत बुन्दकियोंके बीच लाल बिन्दी या लाल-बिन्दियोंके बीच श्वेत बिन्दी भी रचते थे। इनमें घुली या सूखी केसर या कुंकुमका भी प्रयोग होता था। अनेक बार बुन्दकियोंके स्थान पर माथेमें बड़ी बिन्दी या तिलक लगा लिया जाता था [पुष्पाञ्जलि-१६५७]

चित्रकर्मके लिए भक्ति और मकरिका शब्द काव्योंमें आते हैं, यथा—

घर्माम्भः कणलुप्यमानमकरीपत्राङ्करालंक्रियम्।
भूयिष्ठोद्गतफूत्क्रियानिलगलन्मासृण्यविम्बाधरम्॥

—जीवानन्दनम् ४।५

पसीनेके जलकणोंसे मकरीपत्रांकुरकी अलंक्रिया नष्ट हो गई तथा अतिशय निकलती हुई फूत्कारकी वायुसे लाल ओठोंकी चिक्कणता जाती रही।

मकरिका या भक्ति-चित्रणक्रिया पत्तोंके द्वारा अथवा हरताल-मैनसिल के द्वारा भी की जाती थी।[1] पत्तोंमें प्रायः तमालपत्रका उपयोग होता था [**तमालपत्राणि युवतीवदने च—कुट्टनीमतम् १६**]। यह चित्रकर्म चन्दन, कस्तूरी आदि अनुलेपसे भी होता था। यथा—

---

२. षड्वर्गीय भिक्षु मुखपर लेप करते थे, मुखपर चूर्ण डालते थे; मैनसिलसे मुखको अङ्कित करते थे।

पत्युस्ततो दर्पणसक्तपाणेर्मुहुर्मुहुर्वक्त्रमवेक्षमाणा ।
तमालपत्रार्द्रतलेकपोले समापयामास विशेषकं तत् ॥

—सौंदरा० ४।२०

कपोलपाल्यां मृगनाभिचित्रपत्रावलीमिन्दुमुखः सुमुख्याः ।
स्मरस्य सिद्धस्य जगद्विमोहमंत्राक्षरश्रेणिमिवोल्लिलेख ॥

—कुमार० ६।२२

हाथमें दर्पण लिए हुए पतिके मुखको बार-बार देखते हुए पत्नीने तमालपत्रके रससे गीले कपोलपर चित्रकारीको पूरा किया ।

चन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले शंकरजीने सुन्दर मुखवाली पार्वतीजीके गाल कस्तूरीके लेपसे चीत दिये । इसे देखकर यह प्रतीत होने लगा कि यह चित्रकारी सिद्ध कामदेवके हाथोंसे लिखे हुए मन्त्र हैं, जिन मंत्रोंसे संसारको वह वशमें कर लिया करता है ।

सचक्रवाकानि सशैवलानि काशैर्दुकूलैरिव संवृतानि ।
सपत्रलेखानि सरोचनानि वधूमुखानीव नदीमुखानि ॥

—वा० रा० कि० ३०।५६

नदियाँ शरत्कालमें चक्रवाक, शैवाल और काशसे भरी हैं । मानो स्त्रियोंके मुख पत्रलेखा और गोरोचनसे लिप्त हैं ।

लोध्ररज

लोध्र (पठानी लौध) वृक्षकी छालका चूर्ण शरीरपर मुख्यतः, मुखपर लगाया जाता था, इसका रंग पाण्डुर होता है और पसीनेको सुखाता है । सम्भवतः इन्हीं दो गुणोंके कारण कवियोंका यह प्रिय रहा होगा । इसका उपयोग श्वेतिमा गुणके लिए ही हुआ है । स्वास्थ्यकी दृष्टिसे सुश्रुतमें लोध्रके पानीसे मुखको धोना कहा है, लोध्रके पानीसे मुख धोनेपर झाँई, फुंसी, दाग मिटते हैं । यथा—

भिल्लोदककषायेण तथैवामलकस्य वा ।
प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थः शीतोदकेन वा ॥
नीलिकां मुखशोषं च पिडिकां व्यंगमेव च ।
रक्तपित्तकृतान् रोगान् सद्य एव विनाशयेत् ॥
—सुश्रुत० चि० २४।१५–१६

इसीसे कवियोंको यह प्रिय था—

अधरेष्वलक्तकरसः सुदृशां विशदं कपोलभुवि लोध्ररजः ।
नवमञ्जनं नयनपङ्कजयोः विभिदे न शङ्खनिहितात्पयसः ॥
—माघ० ९।४६

अच्छी आँखोंवाली वनिताओंके ओठोंपर लाक्षारस, गण्डस्थल पर शुभ्र लोध चूर्ण, आँखोंमें नूतन अंजन शंखमें रक्खे दूध से भिन्न नहीं था ।

नीतालोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः—मेघदूत, उत्तरमेघ २ ।

अपने मुखोंपर लोध्रके फूलोंका पराग मलकर अलकापुरीकी स्त्रियाँ अपना मुख गौर वर्ण करती थीं ।

कर्णार्पितौ लोध्रकषायरूक्षे गोरोचनाक्षेपनितान्तगौरे ।
तस्याः कपोले परभागलाभाद् बबन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः ॥
—कुमार० ७।१७

पार्वतीके कानोंमें लटकते हुए जौके अंकुर और लोध्रसे पुते तथा गोरोचनासे गोरे गोरे गाल इतने सुन्दर लगने लगे कि सबकी आँखें बरबस उनकी ओर खिंची जाती थीं ।

लोध्रस्तम्भक और रूक्ष है, इसलिए चिकनेपनको दूर करता है । पार्वतीके शरीरपर लगा हुआ तैल इसीसे साफ हुआ था—

तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलमाश्यानकालेयकृताङ्गरागम् ।
वासो वसानामभिषेकयोग्यं नार्यश्चतुष्काभिमुखं व्यनैषुः ॥
कुमार० ७।९.

पार्वतीके शरीर पर मले हुए तैलको लोधकी बुकनीसे सुखाया और कुछ गीला सुगन्धित कालेयक चन्दन लेकर उसके शरीरपर चुपड़ा[1]। तब उसे स्नान योग्य वस्त्र पहिनाकर चौकोर स्नान घरमें स्त्रियाँ ले गयीं।

तेलकी चिकनाईको दूर करनेके लिए मानसोल्लासमें एक विशेष खली कही है।

अधुना स्नेह निर्वृत्या [त्यै] सुगन्धा कथ्यते खली।
आरनाल सुसंसिद्ध गोधूमश्लक्ष्ण चूर्णकैः॥
मदनस्य च मूलेन चूर्णितेन विमिश्रिता।
स्नेहापनयने योज्या पिशुनेनोत्तमा खली॥

—मनसोल्लास. १।३।६४१-४२

कपोलों पर उसी प्रकार चित्रकर्म होता था, जिस प्रकार कि आजकल मेंहदीसे हथेली पर चित्ररचना की जाती है। इसी चित्रकर्मको भक्ति-

---

१. भिक्षुक अंगराग [शरीरमें लगानेका रंग] लगाते थे, मुखराग लगाते थे, अंगराग और मुखराग दोनों लगाते थे। जैसे कामभोगी गृहस्थ।
भिक्षुओ ! मुखपर लेप, मालिश नहीं करनी चाहिए, मुखपर चूर्ण नहीं डालना चाहिए, मैनसिलसे मुखको अंकित नहीं करना चाहिए। अंगराग और मुखराग नहीं लगाना चाहिए। जो लगाये उसे दुक्कटका दोष लगे—विनय पिटक-चुल्लवग्ग।

मुखपर लेप लगानेका लाभ

मुखालेपाद् दृढं चक्षुः पीनगण्डं तथाननम्।
अव्यंगपिडिकं कान्तं भवत्यम्बुजसन्निभम्॥

—सुश्रुत. चि. अ. २४।६५

शृंगार कहा जाता है [भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव–रघुवंश० १३।५५]। यह चित्रकर्म भी प्रसाधनका एक मुख्य अंग था, यथा—

लालयन्नलक प्रान्तान् रचयन्पत्रमञ्जरीन् ।
एकां विनोदयन्कान्तां छायावदनुवर्त्तते ॥

मल्लिनाथ- मेघदूतकी टीका पूर्वमेघ—६५ में

ओष्ठका प्रसाधन

ओठकी उपमा सर्वत्र कन्दूरीके पके लाल फलसे दी गई है। यह फल बीचमें जरा मोटा और किनारोंपर पतला होता है। पकने पर गहरा सुर्ख हो जाता है। लक्षणोंकी इसी समानताके कारण इसे ओठोंकी उपमाके लिए चुना गया है [**पक्क बिम्बाधरोष्ठी—उत्तरमेघ० २२**]। ओठोंपर लाली लानेके लिए रंगके साथ साथ पानका भी उपयोग था। ओठों पर रंग भली भाँति जम जाये इसलिए मोमका उपयोग ओठों पर होता था। यथा—

वर्णविशेषापेक्षा प्रसाधने नो रतिप्रसंगेषु ।
ओष्ठे मदनासंगो नो पुरुषविशेषसंभोगे ॥ —कुट्टनीमतम्. ३१०

वेश्याओंके लिए वर्ण-शुद्धादिकी विशेष चिन्ता प्रसाधनमें होती है, रति प्रसंगमें द्विजादिवर्णोंका विचार नहीं रहता। मोमका संयोग ओठके साथ ही है। पुरुष विशेष संभोगके विषयमें मदन कामकी चिन्ता उनको नहीं होती।

पार्वतीके ओठोंपर भी मोम लगाया गया था—

रेखाविभक्तिः सुविभक्तगात्र्याः किञ्चिन्मधुच्छिष्टविमृष्टरागः ।
कामप्यभिख्यां स्फुरितैरपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठः ॥

—कुमार० ७।१८।

सुडौल आँखोंवाली पार्वतीका निचला ओठ ऊपरके ओठसे एकरेखाके द्वारा अलग हो गया था। जिसपर लगी मोमने उसपर और भी लाली

चढ़ाकर उसे कहीं अधिक सुन्दर बना दिया था, जिसकी सुन्दरता बस फलनेवाली ही थी। जिस समय यह ओठ फड़कता था इसकी शोभा अवर्णनीय हो जाती थी। मोम लगनेसे ओठोंपर अंगराग-आलक्तक—लाक्षारस ठीक जमता है, साथ ही होठोंमें पपड़ी नहीं फूटती। इसीलिए अंगराग या लाक्षारसके साथ ही मोमका भी प्रयोग होता था।

विभ्राणेऽरुणिमानं सहजं जितवन्धु जीवरुचिमधरे।
यदलक्तकविन्यसनं तत्तस्या मण्डनक्रीड़ा॥ —कुट्टनीमतम् ११३।

मालतीके ओठ स्वभावसे ही इतने लाल थे कि दुपहरियाके फूलोंकी लाली भी उसके ओठोंके आगे फीकी लगती थी। फिर भी उसने ओठोंपर जो लाक्षारस लगाया हुआ था वह तो केवल उसका शृङ्गारका शौक था। ओठोंपर महावर लगाकर लोधका चूर्ण उसपर छिड़क देते थे इससे उनपर आकर्षक पाण्डुता आ जाती थी। अजन्ता आदिके चित्रोंमें ओठोंपर जो पीत-श्वेतिमा दिखाई गयी है वह प्रसाधनकी इसी क्रिया का रूप है।

विपत्रलेखा निरलक्तकाधरा निरञ्जनाक्षीरपि विभ्रतीः श्रियम्।
—किरात० ८।४०।

माथेपरसे तिलक मिट गया, ओठोंसे लाक्षारस छुट गया और आँखोंसे अंजन भी पुंछ गया तो भी उसमें शोभा बनी रही।

निवेशितं यावकरागदोक्षये लगत्तदीयाधरसीम्नि सिक्थकम्।
रराज तत्रैव निवस्तुमुत्सुकं मधूनि निर्धूय सुधा सधर्मिणि॥
—नैषध० १५।४३।

दमयन्तीके ओठोंपर लगे लाक्षारसको चमकानेके लिए लगाया गया मोम मधुको छोड़कर अमृतके समान अधरमें रहनेके लिए बेचैन बनकर उसके नीचेके ओठकी सीमामें चिपक गया।

ताम्बूल

आयुर्वेदमें ताम्बूलका उपयोग स्वास्थ्यकी दृष्टिसे वर्णित हुआ है, यों

लोकमें ताम्बूलका उपयोग स्वास्थ्यकी अपेक्षा शौक या शोभाके लिए ही मुख्य है।[1] ताम्बूल सेवनसे ओठोंपर लाली आती है। ओठोंका लाल होना प्रसाधनकी शोभा है, इसलिए लोग स्वास्थ्यकी दृष्टिसे पान खानेको अधिक महत्त्व न देकर शोभा या सम्मानके रूपमें पानका उपयोग करते थे।[1]

भोजन करनेके पीछे पान खानेका प्रायः रिवाज है। इसमें पान, सुपारी, खदिर और चूना होता है। कभी कभी इसमें इलायची, कर्पूर, और अजवायन भी होती है। भोजनके बाद कफकी वृद्धि होती है, इसके लिए बुद्धिमान व्यक्ति कषाय, कटुरसकी वस्तुएँ या सुपारी, कर्पूर, जायफरके साथ पान खाते हैं अथवा धूम पान करते हैं।

वराहमिहिरने पान खानेके गुण इस प्रकार बताये हैं—पान खानेसे कामकी वृद्धि होती है, रूप निखरता है, सौभाग्य बढ़ता है, मुख सुगन्धित होता है, शरीरमें तेज वृद्धि होती है, कफ रोग नष्ट होते हैं। चूनेके कारण खदिर पानमें लाली पैदा करता है, सुपारीके अधिक होनेसे लालिमा कम होती है, चूनेकी अधिकतासे मुखमें दुर्गन्ध आती है। मुख फट भी जाता है, तेजपत्रकी अधिकतासे सुगन्ध बढ़ती है। रात्रिमें पानके अन्दर

पान खानेके लाभ—

१. [क] रुचिवैशद्यसौगन्ध्यमिच्छन्वक्त्रेण धारयेत्।
जातीं लँवग कर्पूर कंकोल कटुकैः सह॥
ताम्बूलीनां किसलयं हृद्यं पूगफलान्वितम्। —संग्रह।

[ख] ताम्बूलं कटुतिक्तमुष्ण मधुरं क्षारं कपायान्वितम्।
वातघ्नं कृमिनाशनं कफहरं दुर्गन्धिनिर्णाशनम्॥
वक्त्रस्याभरणं विशुद्धिकरणं कामाग्निसन्दीपनम्।
ताम्बूलस्य सखे त्रयोदशगुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः॥

—योगरत्नकार।

तेजपत्रकी मात्रा अधिक रखनी चाहिए, दिनमें सुपारी अधिक बरतनी चाहिए। कंक्कोल, सुपारी, लवली [हरफारेवड़ी]; पारिजातसे युक्त पान मनको प्रसन्न करता है।[1]

पान बनाना एक कला है, नैषध चरितमें चित्रण आया है कि बरातियोंको पान दिया गया, तो उन्होंने इसमें सुपारीके टुकड़ोंको बिच्छूका दंश समझकर उसे फेंक दिया, जिससे वे हास्यके पात्र बने।[2] सुपारी, कर्पूर, कस्तूरी, कत्था और अन्य सुगन्धित वस्तुओंको ही बिच्छूके दंशका रूप दे दिया गया था।

अल्बेरूनीने लिखा है कि हिन्दुओंकी पाचन शक्ति कमज़ोर होती है, इसीलिए भोजनके उपरान्त पान और सुपारी खाते हैं। पानके गरम पत्ते प्रत्येक गीली वस्तुको शुष्क करते है, सुपारी दाँत, मसूड़े और आमाशयके लिए स्तम्भक-संकोचक हैं। अल्बेरूनीने ठीक नहीं समझा।

---

१ [क] कामं प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति
सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगन्धितां च।
ऊर्जं करोति कफजांश्च निहन्ति रोगां-
स्ताम्बूलमेवमपरांश्च गुणान् करोति॥
[ख] युक्तेन चूर्णेन करोति रागं रागक्षयं पूगफलातिरिक्तम्।
चूर्णाधिकं वक्त्रविगन्धिकारि पत्राधिकं साधु करोति गन्धम्॥
[ग] पत्राधिकं निशि हितं सफलं दिवा च,
प्रोक्तान्यथा करणमस्य विडम्बनैव।
कंक्कोलपूगलवलीफलपारिजातै-
रामोदितं मदमुदा मुदितं करोति॥

२—मुखे निधाय क्रमुकं नलानुगैरथोज्झि पर्णालिरवेक्ष्य वृश्चिकम्।
दमार्पितान्तर्मुखवासनिर्मितं भयाविलैः स्वभ्रमहासिताखिलैः॥
—नैषध. १६।११०.

कार्डिनरने अपने मार्कोपोलोमें निर्देश किया है कि सुपारी पानकी कटुताको कम करती है, चूना आमाशयको इससे होनेवाली हानिसे बचाता है। सबका मेल स्वादिष्ट, पौष्टिक तथा स्वास्थ्यके लिए हितकारी है। ग्रौजने लिखा है कि पान श्वासको सुगन्धित करता है और दाँतोंकी रक्षा करता है। एडवर्डटैरीने भी लिखा है कि पानमें कुछ विशेष गुण हैं—यह दाँतोंकी रक्षा करता है, मस्तिष्कको शान्त रखता है, आमाशय की शक्ति बढ़ाता है, श्वासकी दुर्गन्धको कम या नष्ट करता है।

वृद्धा स्त्रियाँ और विधवाएँ पानके स्थानपर भोजनके पीछे हरड़का चूर्ण खाती हैं, जिससे उनमें वासना कम हो और वे कृश बनें।

ताम्बूलकरंकवाहिनी—ताम्बूल पिटारीको ले जानेवाली स्त्रियोंका उल्लेख काव्य ग्रन्थोंमें आता है। यथा—**'अथ ताम्बूलकरंकवाहिना मदीया तरलिका नाम;'** तरलिका नामवाली ताम्बूलकी पिटारी ले जानेवाली मेरे साथ गई थी। **'तदियमिदानीमुचिता भवतस्ताम्बूलकरङ्कवाहिनी इति कृत्वा मया प्रेषिता'**—कादम्बरी, मैंने (विलासवतीने) इसे तुम्हारे योग्य जानकर ताम्बूलकरंक वाहिनीके रूपमें तुम्हारे पास भेजा है।

ताम्बूलकरंकभृता सन्दंशगृहीतवीटिका ग्रहणे।
ईषत्स्पृष्टं कुर्वन् मन्दं खटका मुखेन वामेन॥

—कुट्टनीमतम् ७५६

पानकी उपयोगी सामग्रीसे भरी पिटारीको ले जानेवाले सेवकसे पान लेनेके लिए अंगुली और अंगूठेको मिलाकर संदश-चिमटीके आकारमें करके कुछ स्पर्श करते हुए पानको लिया।

वृश्चिकरञ्जितकररुहकरमूलनिबद्धशङ्खचक्रेण।
प्रथमवयस्त्वं भजता ताम्बूलकरङ्कवाहिनाऽनुगतः॥

—कुट्टनीमतम्

भट्टसूनु-चिन्तामणिके नख लाल पुनर्नवासे रंगे हुए थे, और कलाईमें

शंखकी माला बँधी थी। अभी जवानीमें पैर रखा था, उसके पीछे ताम्बूल की करंडिया लिये हुए दासी चल रही थी।

ये ताम्बूलकरंक वाहिनियाँ सदा पान तैयार रखती थीं और नायिका-स्वामिनीको देती थीं, जिससे इनके ओठ लाल रहते थे। ताम्बूल खाना बहुत आवश्यक गिना जाता था, यथा—

१—धिक् ताम्बूलविहीनमाननविलं धिक् पुण्ड्रहीनं मुखम्।
धिक् वेदोक्तिविवर्जितां च रसनां धिक् पाणिमस्वर्णदम्॥
२—प्रत्यूपसि भुक्तसमये युवतीनां चैव संगमे विरमे।
विद्वद्राजसभायां ताम्बूलं यो न खादयेत्स पशुः॥

जिस मुखने ताम्बूल नहीं खाया, जिस माथेपर तिलक नहीं, जिस जिह्वासे वेदवाणी नहीं निकलती और जिस हाथसे स्वर्णका दान नहीं हुआ उसे धिक्कार है। २–प्रातःकालमें, भोजनके पीछे, सम्भोगके पीछे, विद्वानों की तथा राजसभामें जो पान नहीं खाता वह पशुके समान है।[1]

यह है पानकी महिमा, पानका स्वास्थ्यके साथ जो सन्बन्ध है, उसे गौण रखकर ही मुखकी शुद्धि तथा सौन्दर्य-वृद्धिके लिए पानकी प्रथा इस देशमें पहिलेसे चली आ रही है, जो कि ओष्ठ-प्रसाधनकी मुख्य वस्तु है [सकृदुपयुक्तताम्बूलबिम्बाधरकान्तिः—हर्षचरित० ३ रा] पान खाने से ओठोंकी शोभा बढ़ गई थी।

पानमें बरती जानेवाली सुपारी कैसी होनी चाहिये, इस सम्बन्धमें मानसोल्लासमें [अ० ४।२३।६६१–६६५] सूचना दी हुई है।[2]

---

१. सम्मानके रूपमें पान प्राप्त करनेका उल्लेख श्री हर्ष कविने किया है—

ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् —नैषध

२. भंगे पाटलसंकाशान् कषायमधुरान्वरान्।
फालान् कृत्वोष्णतोयेन प्रक्षाल्याशोषघर्षितान्॥ —मानसोल्लास

कानोंका प्रसाधन

कानोंका प्रसाधन बहुत ही सरल था—इसके लिए झूमते हुए शिरीष के फूलोंको ही कानोंमें लटका दिया जाता था। शिरीषपुष्पके सिवाय शैवाल मञ्जरी तथा अशोकपल्लव भी कानमें लटकाये जाते थे, यह सब प्रसाधन सादा तथा मोहक था। यथा—

१—कृतं न कर्णार्पितबन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।

—शाकुन्तल ६।१८

२—अपहृताशेषशिरीषसौभाग्याभिः शैवालमञ्जरीभिः कृतकर्णपूरम्।

—कादम्बरी, चन्द्रापीड़का वर्णन ५।४

३—लोहितायमानं कर्णपूराशोकपल्लवैः —कादम्बरी, कादम्बरी वर्णन

४—एतदस्य कर्णाभरणमरकतप्रभाश्यामायितम् उपरचितविकच. शिरीषकुसुमकर्णपूरमिव कपोलतलमाभाति—कादम्बरी

मित्र! अभी तो कानमें शिरीषके फूल नहीं लगाये जो इसके कपोलों तक लटकते रहें। २—शिरीषके फूलोंकी शोभाको हरण करनेवाली शैवालकी मञ्जरी कानमें पहिनी हुई थी। ३—अशोकके लाल कोमल पत्तोंसे कर्णाभरण रचाये जानेके कारण वे भी लाल हो गये थे। ४—इस चन्द्रापीड़के कानोंमें शिरीषका खिला फूल पन्नेके समान चमकता है। फूलोंके ये झूमके आज सोने-चाँदी और हीरे आदि रत्नोंके झूमकोंमें बदल गये। दोनों ही कानमें बनाकर पहिने जाते हैं। कदम्बके फूल भी कानमें सजाये जाते थे [विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः—ऋतु० २।२५]।

स्तनोंका प्रसाधन

स्तनों पर केसर, कस्तूरी, चन्दन, गोरोचना आदि सुगन्धित द्रव्योंका अनुलेपन करके, इनपर चित्र कर्म—मकरिका-पत्रभंग आदि बनाये जाते थे। कपोलोंकी भाँति इनपर भी पत्तोंको काटकर लगाया जाता था। इसका एक

दूसरा भी रूप था—पत्तेको स्तनपर रखकर शेष स्थानपर लेप लगाना और पत्तेवाले स्थानको खाली या दूसरे रंगसे रंगना। एक प्रकारसे यह शोभाका अंग था। साथ ही जैसा इच्छित होता था शीत या उष्ण स्पर्श ऋतुके अनुसार इस लेपसे प्राप्त होता था। यथा—

ग्रीष्म ऋतुमें—"तन्वीर्मृणालवलयाः कान्ताश्चन्दनरुषिताः"

कर्पूरचन्दनार्द्राङ्गो विरलानङ्गसंगमः॥

हेमन्तमें—कुंकुमेनानुदिग्धाङ्गोऽगुरुणा गुरुणाऽपि वा॥ संग्रह-सूत्र ४°।

ग्रीष्मऋतुमें मृणालका वलय (कड़ा) पहिने, शरीर पर चन्दनका लेप किये; या कर्पूर और चन्दनसे चर्चित स्त्रियोंका सुखभोग करे। हेमन्तमें केसर और अगरुका घना लेप करे।

पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चितास्तुषारगौरार्पितहारशेखरः।—ऋतु० १।६

हिमके समान उजले और अनूठे हारसे सजे, चन्दनसे पुते स्तन देखकर किसका मन चंचल नहीं होता। स्तनोंपर अगरु-कुंकुमके लेपका वर्णन प्रायः मिलता हैं, यथा—

१—कामिनीकुचपत्रभंगेषु वक्रता—कादम्बरीमें तारापीड़ वर्णन।

२—उल्लसितकुचकृष्णागुरु पंकपत्रलताङ्कितं भूप्रच्छपटम्; —कादम्बरी।

३—कुचचन्दनचूर्णधवलितोर्म्मितलम्—कादम्बरी

४—हरिण इव हरिणलांछने न लिखितागुरुपत्रभंगः पयोधरभारि—कादम्बरी [विलासवती वर्णन]।

१—तारापीडके राज्यमें कामिनीके स्तनोंके ऊपर पत्राकार रचनामें ही वक्रता थी, लोगोंके चित्तमें नहीं। २—स्तनों पर काले अगरुके लेप से रची पत्रलतासे ऊपरका वस्त्र भी चिह्नित हो जाता था। ३—जलमें क्रीड़ा करते समय रमणीके स्तनोंका चन्दन धुल जानेसे जल भी श्वेतवर्ण हो गया था। ४—चन्द्रमामें जैसे हरिणका चिह्न है, उसी प्रकार तुमने

दोनों स्तनों पर काले अगुरुसे पत्र-रचना क्यों नहीं की; हरिणका चिह्न क्यों नहीं बनाया ? ।

निपुणिके ! लिख मणिशालभञ्जिकास्तनेषु कुंकुमरसपत्रभंगान्—कादम्बरी ।

निपुणिके ! मणिमयपुत्तलिकाओंके कुचोंपर कुंकुमरससे फूल पत्ते बना दो ।

कर्पूरधूलिधूसरेषु मलयजरसलवलुलितेषु वकुलावलीवलयेषु स्तनेषु न्यस्तनलिनीपत्रप्रावरणम्—कादम्बरी ।

कर्पूरकी रेणुसे धूसर हुए चन्दन बिन्दुसे पूर्ण वकुल कुसुम मालाओंके वलयवाले स्तनोंपर कमलपत्र रूपी वस्त्र रखे हुए थे ।

जिस प्रकार कपोलोंपर की गई चित्ररचनाको मकरिका कहते थे । उसी प्रकारसे स्तनोंपर की गई चित्र-रचना भी मकरिका या भक्ति कही जाती थी । यथा—

आलिख्य सख्याः कुचपत्रभङ्गीमध्ये सुमध्या मकरीं करेण ।
यत्रावदत्तामियमालि ! यानं मन्ये त्वदेकावलिनाकनद्याः ॥नैषध ६।१६

किसी स्त्रीने सखीके स्तनोंपर चित्र रचना बनाकर उसमें मकरी, मछली बनाई, और सखीसे कहने लगी कि मेरे विचारसे तुम्हारे एक लड़ीकी माला स्वर्ग गंगा है, और यह उसकी वाहन है [मकरी-मछली-कामदेवका चिह्न है] ।

लेपके लिए चन्दन, केसर, कस्तूरी, गोरोचनका उपयोग होता था । यह लेप सुगन्धित और शीतल अथवा ऊष्ण बनाये जाते थे । शीतलता बढ़ानेके लिए कर्पूर मिला देते थे । केसर, कस्तूरीका लेप गरम होता है, अगरुका लेप भी गरम होता है और श्वेत चन्दन एवं कर्पूरका लेप ठण्डा । गोरोचनाका लेप गरम होनेके साथ वर्ण्य-कान्ति बढ़ानेवाला है ।

लेपके विषयमें सामान्य बातें—लेप करनेसे उस स्थानके रोमकूपोंका मुख बन्द हो जाता है; यदि लेप मोटा किया जाता है, तो वह शीतल होने

पर भी गरमी पैदा करता है। गरम लेप पतला होने पर भी ठण्डक देता है—

श्लक्ष्णपिष्टो घनो लेपश्चन्दनस्यापि दाहकृत्।
त्वग्गतस्योष्मणो रोधाच्छीतकृच्चान्यथाऽगुरोः॥

—चरक. चि. अ.३०।३२४.

चन्दनका बारीक पिसा घना लेप भी दाह करता है और अगरुका पतला लेप भी ठण्डक देता है, क्योंकि मोटे लेपसे शरीरकी गरमी अन्दर रुकती है, पतले लेपसे गरमी निकलती रहती है।

लेप सदा ताजा-गीला पीसकर लगाना चाहिए; एक दिनका पीसा हुआ या देरका पीसा लेप लगाना ठीक नहीं। विना पहिला लेप उतारे दूसरा लेप नहीं लगाना चाहिए। उतारे हुए लेपको पुनः नहीं बरतना चाहिए। लेप न तो बहुत पतला और न गाढ़ा ही होना चाहिए। लेप त्वचाके लिए उपयोगी प्रसाधन होता है। उसे बिगाड़ने वाला नहीं।[1]

---

१. प्रदेहाः सर्व एवैते कर्त्तव्याः संप्रसादनाः।
क्षणे क्षणे प्रयोक्तव्याः पूर्वमुद्धृत्य लेपनम्॥
नातिस्निग्धो न रूक्षश्च न पिण्डो न द्रवः समः।
न च पर्युषितं लेपं कदाचिदवचारयेत्॥
न च तेनैव लेपेन पुनर्जातु प्रलेपयेत्।
क्लेदवीसर्पशूलानि सोष्णभावात् प्रवर्त्तयेत्॥
अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्च लेपो यद्यवचार्यते।
त्वचि न श्लिष्यते सम्यङ् न दोषं शमयत्यपि॥
तन्वालिप्तं न कुर्वीत संशुष्कोह्यवपुटायते॥

—चरक. चि. अ. २१।९८ १०४.

पैरोंका प्रसाधन

पैरोंके लिए आलक्तक—महावरका व्यवहार होता था। पैरोंको रंगनेकी प्रथा पुरानी है, इससे शरीरके स्वास्थ्यपर क्या प्रभाव होता है, यह स्पष्ट नहीं। कुछ लोगोंने लाक्षारसका सम्बन्ध इसके स्तम्भक गुणके कारण स्त्रियोंकी शरीरशुद्धिसे जोड़ा है। परन्तु इतना जरूर है कि पैरोंपर तैल लगानेका विधान आयुर्वेदमें भी है—

खरत्वं स्तब्धता रौक्ष्यं श्रमः सुप्तिश्च पादयोः।
सद्य एवोपशाम्यन्ति पादाभ्यंगनिषेवणात्॥
जायते सौकुमार्यं च बलं स्थैर्यं च पादयोः।
दृष्टिः प्रसादं लभते मारुतश्चोपशाम्यति॥

—चरक. सू. अ. ५।९०-९१.

पैरोंपर तेल लगानेसे खरता, स्तब्धता, रूक्षता, थकान, पैरोंका सोजाना आदि शीघ्र दूर हो जाता है। पैरोंमें सुकुमारता, बल और स्थिरता आती है, दृष्टि बढ़ती है, वायु शान्त होती है।

मानसोल्लासमें पैरोंको सुन्दर करनेके लिए भिन्न-भिन्न अभ्यंग दिये हैं—

वामपार्श्वे शयानः सन् पादावभ्यञ्जयेत् सुखी।
सर्पिषा शतधौतेन नवनीतेन वा नृपः॥
दध्ना तैलेन पयसा तक्रेणापि युतेन वा।
श्रीखण्डक्षोदनीरेण बदर्याः फेनकेन वा॥
पादसंवाहदक्षाणं कामिनीनां मनोहरैः।
अशोकपल्लवप्रख्यैर्हस्तैरत्यन्तपेशलैः॥
वसन्ते सर्पिषा दध्ना शीतेन पयसाऽपि वा।
निदाघे नवनीतेन काञ्जिकेन सफेनकैः॥
वर्षासु वसयाभ्यङ्गौ पादौ तक्रेण वा पुनः।
शतधौतेन शरदि सर्पिषा चन्दनोदकैः॥

हेमन्ते शिशिरे चैव तैलेनाभ्यञ्जयेत्पदे ।
पश्चात्प्रक्षालयेत्पादौ सुखस्पर्शेन पायसा ॥
मसूरयवपिष्टैश्च हरिद्राचूर्णमिश्रितैः ।
उद्ध [द्वृ] त्य च पुनः पादौ क्षालयेत्सुखवारिणा ॥

राजा वाम पार्श्वमें लेटकर पावोंपर शतधौत घृत, मक्खन, दही, तैल, दूध, तक्र, श्रीखण्ड बनाते समय निकले पानी, बेरके पत्तोंकी झाग इनमें किसी एक वस्तुसे पैर मलनेमें कुशल, अशोकके कोमल पत्तोंके समान कोमल हाथोंवाली नारियोंसे पैरोंपर मालिश कराये। वसन्त ऋतुमें घी, दही या शीतल दूधसे; ग्रीष्ममें मक्खन या बेरके पत्तोंकी झागमें कांजी मिलाकर; वर्षामें वसासे या तक्रसे, शरद ऋतुमें शतधौत घृत या चन्दनके पानीसे; हेमन्त और शिशिरमें तैलसे मालिश कराये। पीछेसे सुहाते हुए गरम पानीसे पैरोंको धोकर मसूर-जौ-हल्दीको पीसकर लेप करे। इसको उतारकर फिर गरम पानीसे पैरोंको धोये।

लाक्षारसमें भी [महावर] यही गुण हैं, यह कहना कठिन है, परन्तु सुन्दरता जरूर है यथा—

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम् ।
सा रंजयित्वा चरणौ कृतार्शीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान ॥

—कुमार ७।१९.

पार्वतीके चरणोंमें जब सखी महावर लगा चुकी तब ठिठौली करते हुए आशीर्वाद दिया कि भगवान् करे तुम इन पैरोंसे अपने पतिके सिरकी चन्द्र-कलाको छुओ। इस पर पार्वतीने मुखसे तो कुछ नहीं कहा, परन्तु एक माला उठाकर उसकी पीठपर दे मारी।

महावर—लाक्षारससे बनाया जाता है, लाक्षारस ठण्डा और स्तम्भक होता है। लाल होनेसे पैरोंमें सुन्दर लगता है। इसी शोभाके कारण इसका प्रसाधनमें उपयोग है।

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान ।

—कुमार० ७।५८

एक स्त्री अपने पैरोंमें महावर लगवा रही थी, शिवजीकी बारातको देखनेकी लालसासे उसे बीचमें छोड़कर झटपट खिड़कीके पास तक अपने महावर लगे पैरोंकी छाप बनाती हुई दौड़ गई।

अविरलमलसेषु नर्तकीनां द्रुतपरिषिक्तमलक्तकं पदेषु ।
स वपुषमिव चित्तरागमूहर्नमितशिखानि कदम्बकेसराणि ॥

—किराता० १०।४३

अर्जुनके प्रति नर्तकियोंके मनमें जो उत्कट अनुराग था वही अनुराग पैरोंमें लगाये गाढ़े महावरकी गरमीसे पिघलकर लालरङ्गके रूपमें उनके पैरोंसे निकलने लगा था।

'अतिबहलपिण्डालक्तकरसरागपल्लवितपादपङ्कजाम् अचिरमृदित-महिषासुररुधिररसचरणामिव कात्यायनीम् ॥'

—कादम्बरी [चाण्डालकन्यावर्णन]।

गाढ़े और बहुत अधिक लगाये आल्तेकी लालीसे चाण्डाल कन्याके चरणकमल नूतन पल्लवके समान रक्तवर्ण हो गये थे, इससे यह तत्काल मारे महिषासुरके रक्तसे शोभित दुर्गाके समान लग रही थी।

१— आताम्रतामपनयामि विलक्ष एष
लाक्षाकृतां चरणयोस्तव देवि मूर्ध्ना ।

—रत्नावली ३।१४ ।

२—न पतितः चरणयोरालक्तकरसः —कादम्बरी ।

१—पैरोंमें लगाई लाखकी रक्तिमाको तुम्हारे पैरोंमें सिर रखकर दूर करता हूँ। २—रानी! तुमने अपने पैरोंमें महावर नहीं लगाई?

महावरका न लगाना शोक या दुःखको सूचित करता है; इसलिए सुहागिन स्त्रियाँ मङ्गल चिह्न रूपमें इसको धारण करती हैं।

आजकल महावरका रिवाज पूर्वमें अधिक है, पश्चिममें और राजपूतानेमें मेंहदीका उपयोग है, महावर बंगालमें अधिक लगाया जाता है। मेंहदी और लाक्षारस दोनो ठण्डे हैं, दोनोंका रक्तके साथ सम्बन्ध है, मेंहदी रक्तको साफ करती है। इसे मदयन्तिका भी कहते हैं। लाक्षारस शीतल और स्तम्भक है। पैरोंके प्रसाधन-शोभाके लिए इस रङ्गको चुना गया है। पैरके तलुवे लाल ही प्रशंसा योग्य माने जाते हैं। इसके लिए प्रायः महावर ही लगाया जाता था—

काश्चिदार्द्रालक्तकरसपाटलितचरणपुटाः;
कमलपरिपीत बालातपा इव नलिन्यः। —कादम्बरी।

कुछ स्त्रियाँ गीले महावरसे चरणोंको लाल रँगकर, कमलके ऊपर पड़ती नई धूप वाली कमल लताके समान दीखती थीं।

सालक्तकपदकमलविन्यासैः पल्लवमयमिव क्षितितलम्'
—कादम्बरी[चन्द्रपीडावलोकन]।

आलता लगे चरणकमलोंके पड़नेसे सारी भूमि मानो पल्लवमय हो गई थी।

'नितान्तलाक्षारसरागरञ्जितैः नितम्बिनीनां चरणैः सनूपुरैः।
पदे पदे हंसरुतानुकारिभिः जनस्य चित्तं क्रियते स मन्मथम् ॥
—ऋतुसंहार० १।५

महावरसे रंगे स्त्रियोंके पैरोंको देखकर लोगोंका मन चञ्चल हो जाता है। इन पैरोंमें हंसोंके समान रुन-झुन करने वाले बिछुए बज रहे हैं।

पदे द्वयेऽस्या नवयावरञ्जना जनैस्तदानीमुदनीयतार्पिता।
चिराय पद्मौ परिरभ्य जाग्रती निशीव विश्लिष्य न वा रविद्युतिः ॥
—नैषध०।

दमयन्तीके दोनों चरणोंमें लगाई गई महावर उगते हुए सूर्यकी कान्ति समझी गई, जो बहुत कालतक दो कमलोंका आलिङ्गन करके रात्रिके आने पर उनसे जुदा हुई थी।

अङ्गराग या अरगजा

शरीरकी शोभा तथा पसीने की दुर्गन्धिको कम करनेके लिए शरीर पर सुगन्धित द्रव्योंका लेप किया जाता था। इनमें मुख्य द्रव्य हल्दी [आँवा हल्दी], केसर, चन्दन और कर्पूर थे। हल्दीके लिए वर्ण्य शब्द आता है। हल्दी रंगको साफ करती है, इसका लेप प्रायः मुख पर होता है। काव्य ग्रन्थोंमें हल्दीके लेपका उल्लेख देखनेमें नहीं आया। संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः चन्दन, केसर और कर्पूर का ही उल्लेख आता है। चन्दन और कर्पूर ठण्डे हैं, केसर गरम है, परन्तु केसरका भी पतला लेप ठण्डक देता है। इसके अतिरिक्त श्वेत अगरु और गोरोचनाका भी उपयोग अंगरागके लिए होता था।

विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरङ्गं गोरोचना पत्रविभक्तमस्याः।
सा चक्रवाकाङ्कितसैकतायास्त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ॥

—कुमार० ७।१५।

किसी स्त्रीने उजले अगरुसे बना [चन्दनसे] अंगराग पार्वतीके शरीरपर मला और फिर गोरोचनसे उसके शरीरपर चित्रकर्म किया। जिस गंगाके किनारेकी बालूमें चकवे बैठे हों वह उजली धारा वाली गंगा भी इस समय पार्वतीके शरीरके सामने फीकी लग रही थी।

मृषाविषादाभिनयादयं क्वचिज्जगोप निःश्वासततिं वियोगजाम्।
विलेपनस्याधिकचन्द्रभागता विभावनाच्चापललाप पाण्डुताम्॥

—नैषध० १।५१।

नलने किसी वस्तुके विषयमें खेदका बहाना करके विरहसे उत्पन्न हुई निःश्वासोंकी परम्परा छिपाई; तथा शरीरपर लगे हुए चन्दनमें कपूरकी मात्रा अधिक बताकर अपने शरीरकी पाण्डुताको छिपाया।

'परिमृष्टगात्रकुंकुम किञ्चित्पिञ्जरितवसनसंवीतः।'—कुट्टनीतम् ६३

शरीरपर केसरका लेप किए होनेसे वस्त्र कुछ पीले हो गये थे।

नाहं यियासोर्गुरुदर्शनार्थमर्हामि कर्त्तुं तव धर्मपीड़ाम् ।
गच्छार्यपुत्रैहि च शीघ्रमेव विशेषको यावदयं न शुष्कः ॥
अथाप्यनाश्यानविशेषकायां मय्येष्वसि त्वं त्वरितं ततस्त्वाम् ।
निपीडयिष्यामि भुजद्वयेन निर्भूषणेनार्द्रविलेपनेन ॥

—सौन्दर० ४।३४–३६ ।

आप गुरुके दर्शनके लिये जाना चाहते हैं, मैं आपके रास्तेमें रुकावट नहीं डालती । हे आर्यपुत्र ! जाओ; जल्दी लौट आओ; जिससे यह लेप सूखने न पाये । यदि मेरे विशेषक—लेपके सूखनेसे पहिले तुम लौट आये तो आभूषण रहित एवं गीले लेपवाली दोनां भुजाओंसे तुम्हारा आलिङ्गन करूँगी ।

'मनोऽनुकूला हरिचन्दनार्द्रास्तृड्दाहमूर्च्छा दवथून् जयन्ति'

—संग्रह० चि० १ ।

हरिचन्दन-गोपीचन्दनका लेप किए हुए स्त्रियाँ यदि मनके अनुकूल हों तो प्यास, दाह, मूर्च्छाको नष्ट करती हैं ।

चन्दनागुरुदिग्धाङ्गो यवगोधूमभोजनः ॥ —चरक०सूत्र० अ० ६।२५

शरीर पर वसन्तऋतुमें चन्दन और अगरुका मिलाकर लेप करे; जौ-गेहूँ का भोजन करे; ग्रीष्ममें केवल चन्दनका लेप करे । [भजेच्चन्दनदिग्धाङ्गः] हेमन्तमें अगरुका लेप करे [आलिंग्यागुरुदिग्धाङ्गीम्—चरक] ।

अरगजाका अर्थ अवलेप है, यह अङ्गरागके अन्दर ही आता है । परन्तु इसका तात्पर्य अन्य सुगन्धित द्रव्यों, इत्रादिसे भी है । केशर, चन्दन, कपूर आदि मिलाकर इसे बनाते थे । जायसीने लिखा है—

कीन अरगजा मर्दन औ सुख दीन नहान ।
पुनि भई चाँद जो चौदस रूप भयो छिप मान ॥

तुलसीने भी कहा है—

गली सकल अरगजा सिंचाई, जहँ-तहँ चौके चारु पुराई ॥

सूरकी प्रसिद्ध पंक्ति है—

खर को कहा अरगजा लेपन मर्कट भूषन अङ्ग ।

बिहारीने तो अरगजाको अपने निजी तरीकेसे बखाना है—

मैं लै दयो लयो सुकर छुवत छुन कि गौ नीर ।
लाल तिहारो अरगजा उर है लग्यो अबीर ॥

स्नान-विधि

अत्रिपुत्रने स्वास्थ्यकी दृष्टिसे स्नानके लाभ बताते हुए कहा है—स्नान करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध, शरीरमें भारीपन-आलस्य, तन्द्रा, कण्डू, मैल, भोजनमें या काममें अनिच्छा, पसीनेकी वीभत्सता आदि नष्ट होती हैं। स्नान करना पवित्र, वृष्य, आयुवर्धक, श्रम-स्वेद-मलको दूर करनेवाला है, शरीरमें बल-वृद्धि करता है और ऊर्जको बढ़ाता है [चरक० सूत्र० अ० ५]।

भारतका जलवायु ही प्रायः मनुष्यको स्नानके लिए बाध्य कर देता है। स्नान प्रतिदिन करनेकी प्रथा है। ग्रीष्मऋतुमें दिनमें दो वार भी स्नान करते हैं। स्नान करनेके लिए नदियोंका उपयोग सुखपूर्वक होता है। नदियोंके अभावमें कुएँका पानी उपयोगमें आता था जैसा कि मोहेंजोदड़ों की खुदाईमें प्राप्त स्नानघरके वर्णनसे ज्ञात होता है। यहाँ स्नानके लिए एक बड़ा हौज़ था; इसकी लम्बाई ३९ फीट और चौड़ाई २३ फीट थी। स्नानगृह आयताकार था। इसके चारों ओर बरामदा था, बरामदेके पीछे रथ्या और कमरे थे। हौजकी गहराई आठ फीट थी। स्नान करनेवालोंके नीचे उतरनेके लिए इसमें दोनों ओर सीढ़ियाँ थीं। हौज़को कुओंके पानीसे भर दिया जाता था और गन्दा पानी एक ढँपी नालीके द्वारा बाहर कर दिया जाता था।[1]

---

१. डाक्टर मोतीचन्द्रजीका लेख—"कोसोमैटिक एण्ड कौफीयर एनसीयन्ट इण्डिया—भाग ८।१९४०।

स्नानगृह—इस बड़े स्नानघरके साथ-साथ छोटे-छोटे स्नानगृहोंकी भी एक पंक्ति थी। बड़े हौजके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें एक और मकान था जो कि 'हमाम' या उष्णस्वेदके लिए रहा होगा। इसकी खुदाईमें चौकोर चौकियाँ मिली हैं, जो पक्की ईंटोंसे ठोस बनी हुई हैं।[1]

पीछेसे स्नानघर घरोंमें ही बनते थे। इस प्रकारके स्नान-घरोंका राजकीय वर्णन संस्कृत काव्योंमें मिलता है। कादम्बरीमें राजा शूद्रकके स्नानगृहका वर्णन दिया गया है;

'विततसितवितानाम्, अनेकचारणगणनिबध्यमानमण्डलाम्; गन्धोदकपूर्णकनकमयजलद्रोणीसनाथमध्याम् उपस्थापितस्फटिकस्नान-

---

१. यह वर्णन विनयपिटकके जन्ताक घरसे तथा चरकके जेन्ताक घरसे [शुद्धपाठ जन्ताक ही चाहिए] मिलता है—यथा—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ; चंक्रम और जन्ताघरकी।

उस समय भिक्षु उभड़-खाभड़ चंक्रम पर टहलते थे, पैर दर्द करते थे। भगवान्से यह बात कही!

भिक्षुओं अनुमति देता हूँ—समतल करनेकी।

जन्ताघर नीची कुर्सीका होता था [बरसातमें]पानी लग जाता था।

अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सी करनेकी।

चिनाई गिर पड़ती थी।

अनुमति देता हूँ; ईंट, पत्थर और लकड़ी—तीन प्रकारकी चिनाईकी।

चढ़नेमें तकलीफ़ होती थी—

अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढ़ियोंकी—ईंटकी सीढ़ी, पत्थरकी सीढ़ी और लकड़ीकी सीढ़ीकी।

चढ़ते समय गिर पड़ते थे—

अनुमति देता हूँ बाँहीकी

जन्ताघरमें किवाड़ न होते थे—

पीठाम्; एकान्तनिहितैरतिसुरभिगन्धसलिलपूर्णैः परिमलाकृष्ट-मधुकर-कुलान्धकारितमुखैरातपभयान्नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैरिव स्नानकलशैरुप-शोभितां स्नानभूमिमगच्छत् ।—कादम्बरी ।

अनुमति देता हूँ किवाड़-पृष्ठसंघाट [बिलाई], उलूखल [देहरी], उत्तरपाशक [सदल], अर्गलवर्त्तिक [कपाट], कपिर्सीसक [खूँटी], सूची [कूंजी], घटिक [ताला], तालछिद्र [तालेका छेद], आविञ्जन छिद्र [रस्सीका छिद्र], आविञ्जनरज्जु [लटकन रस्सी] की ।

जन्ताघरकी भीत जलसे खियाती [घिसती] थी ।

अनुमति देता हूँ मेंडरी बनानेकी ।

जन्ताघरमें धूमनेत्र [धूँआँ निकालनेकी चिमनी] न थी ।

अनुमति देता हूँ धूमनेत्रकी ।

उस समय भिक्षु छोटे जन्ताघरके बीचमें आगका स्थान भी बनाते थे । आने-जानेका अवकाश न रहता था ।

अनुमति देता हूँ छोटे जन्ताघरमें एक ओर आगका स्थान बनानेकी और बड़े जन्ताघरमें बीचमें ।

जन्ताघरमें अग्निमुख [पुत्ता] जल जाता था ।

अनुमति देता हूँ मुखपर मिट्टी देनेकी ।

हाथमें मिट्टी भिगोते थे ।

अनुमति देता हूँ मिट्टीके [भिगोनेके लिए] दोनेकी ।

जन्ताघरमें आग कायाको जलाती थी ।

अनुमति देता हूँ पानी लाकर रखनेकी ।

थालीमें भी पात्रमें भी पानी लाते थे ।

अनुमति देता हूँ पानीके स्थान [उदकायान] की और शराव [पुरवेकी] की ।

महाराजके स्नान करनेके स्थानमें छतपर शुभ्रवर्णका चँदोवा तना हुआ था। स्तुति पाठक चारों ओर मण्डलाकार खड़े हुए थे। बीचमें सुगन्धित जलसे भरी सोनेकी एक द्रोणी (कंडाल) थी; नहानेकी चौकी स्फटिककी बनी थी, एक भागमें सुगन्धित जलपूर्ण अनेक कलश रक्खे हुए थे। जलकी सुगन्धसे आकर्षित होकर भ्रमरगण कलशके मुखपर बैठकर अन्धेरा कर रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था कि धूपके भयसे कलसेका मुख नीले-काले वस्त्रसे ढाँप दिया गया है।[1]

उस समय भिक्षु जन्ताघरमें जमीनपर बैठते थे, शरीरमें खुजली होती थी।

अनुमति देता हूँ जन्ताघरकी चौकीकी।

उस समय जन्ताघर घिरा न होता था।

अनुमति देता हूँ ईंट-पत्थर और लकड़ी [इन] तीन प्राकारोंसे [जन्ताघरको] घेरनेकी। विनयपिटक चुल्ह० ५।२।२।

तुलना कीजिए चरकमें वर्णित जेन्ताक [जन्ताक] घरसे—

'अथ जेन्ताकं चिकीर्षुर्भूमिं परीक्षेत्—तत्पूर्वस्यां दिशि उत्तरस्यां वा गुणवति प्रशस्ते भूमिभागे कृष्णमृत्तिके सुवर्णमृत्तिके वा परिवापपुष्करिण्यादीनां जलाशयानामन्यतमस्य कूले दक्षिणे पश्चिमे वा सूपतीर्थे समसुविभक्तभूमिभागे सप्ताष्टौ वाऽरत्नीरुपक्रम्योदकात्प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वाभिमुख तीर्थं कूटागारं कारयेत्। उत्सेधविस्तारतः परमरत्नीः षोड़श, समन्तात् सुवृत्तं मृत्कर्म सम्पन्नमनेकवातायनम्, अस्य कूटागारस्यान्तः समन्ततो भित्तिमरत्नीविस्तारोत्सेधां पिण्डिकां कारयेदाकपाटात्, मध्ये चास्य कूटागारस्य चतुष्किष्कुमात्रं पुरुषप्रमाणं मृण्मयं कन्दुसंस्थानं बहुसूक्ष्मछिद्रमङ्गारकोष्ठकस्तम्भं सपिधानं कारयेत्।'—चरक० सू० अ० १४।४६

१. नलचम्पूमें भी यह वर्णन इसी प्रकार है—
वररजनीकरकान्ते चित्राभरणे निशा नभःसदृशे।
नृप मज्जनभवने स वितानं भाति परमश्रीः॥

—नलचम्पू ३।१६

गन्धोदकका उल्लेख सुश्रुतमें भी आता है "**क्षीरीवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा;**" **रूप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा** "**स्नापयेत्**"—शा० अ० १०। १३—शिशुके उत्पन्न होनेपर उसे पीपल, बरगद, पिलखन, जामुन, गूलरके पत्तोंसे पकाये पानीसे अथवा सर्वगन्धोदक—एलादि गणसे बने क्वाथसे स्नान कराये; [**एला-तगर कुष्ठ मांसीध्यामक त्वक् पत्र नागपुष्प प्रियगुहरेणुका व्याघ्रनखशुक्तिचण्डास्थौणेयकश्रीवेष्टकचोचचोरकैलावालुक गुग्गुल सर्जरस तुरुष्क कुन्दरूकागुरु स्पृक्कोशीर भद्रदारू कुङ्कुमानी पुन्नाग केशरं चेति**]। यह एलादि गण वर्ण-कान्तिको निर्मल करता है; कण्डू, पिडिकाओं और कोठको नष्ट करता है [सूश्रुत० सूत्र० अ० ३८।२४-२५]।

स्नानके लिए चौकी चन्दनकी तथा कछुएके आकारकी बीचसे ऊँची समतल; किनारों पर ढालू-तिरछी रहती थी। जिससे पानी नीचे बह जाये [**न्यस्तं चन्दनदारुनिर्मितमिदं कूर्मासनं चासितुम्**—जीवानन्दनम् ४।१२]।

स्नानका पानी

स्नानके लिए पानी बिल्कुल ठण्डा उपयोगमें नहीं लाते थे। [**क्वाथोष्णानि जलानि मज्जनगृहे कुम्भीषु संगृह्यते**—जीवानन्दनम् ४।२२]। क्वाथ या सुगन्धित वनस्पतियोंसे बनाया पानी स्नानके काममें आता था, इसलिए उसमें सामान्य गरमी रहती थी। शूद्रकके स्नानके समय गन्ध द्रव्योंसे पृथक्-पृथक् स्नानका उल्लेख मिलता है, [**काश्चिन्मलयसरित इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन, काश्चिदुत्क्षिप्तसकलसपार्श्वविन्यस्तहस्तपल्लवाः प्रकीर्यमाणनखमयूखजालकाः प्रत्यङ्गुलिविवरविनिर्गतजलधाराः सलिलयंत्रदेवता इव; काश्चिज्जाड्यमपनेतुमाक्षिप्तबालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलसहस्ताः कुंकुमजलेन**

वाराङ्गना क्रमेण राजानमभिषिषिचुः—कादम्बरी]।[1]

अभ्यंग

स्नानसे पूर्व शरीर पर तैल और सिरमें आँवला लगाया जाता था; [१-काश्चित्समुद्रवेला इव समकरोत्क्लिप्तामलकाः—नलचम्पू ३।; २—करमृदितसुगन्धामलकालिप्तशिरसो—कादम्बरी; तैल १—काश्चिन्मलयाचलभूमय इवोत्कृष्टगन्धधारितैलाः—नलचम्पू–३; २—अभ्यंगाय सुवर्णपात्र निहितं तैलं वलत्सौरभम्–जीवानन्दनम्–४। ११]। शरीरपर तैलका अभ्यंग एक आवश्यक कर्त्तव्य था।

अभ्यंगके गुण—शरीरपर तैलकी मालिशसे मनुष्यमें बल आता है, त्वचा सुन्दर होती है, जिस प्रकार घड़ा तैल या घी लगानेसे मजबूत होता है और पहियेपर तैल लगानेसे वह ठीक काम करता है उसी प्रकार शरीरपर तैल लगानेसे शरीरकी त्वचा दृढ़ और सुन्दर बनती है। स्पर्शन कार्य त्वचा के अधीन है, स्पर्श ज्ञानका कारण वायु है। इसलिए वायुको शान्त करनेके लिए तैलकी मालिश सर्वश्रेष्ठ है। जो व्यक्ति नित्य प्रति शरीरपर तैल मलता है उसे चोट आदिसे कष्ट नहीं होता; देखनेमें

---

१. स्नानके लिए सामान्यतः ठण्डे और गरम जल दोनोंका उपयोग होता है; यथा—

उष्णाम्बुनाऽधः कायस्य परिषेको बलावहः।
तेनैव चोत्तमांगस्य बलहृत्केशचक्षुषाम्॥

स्नानके लिए ग्रीवा या कटिसे निचले भागके लिए गरम पानी—गुनगुना पानी उत्तम है। ग्रीवासे ऊपरके लिए ठण्डा पानी अच्छा है। गरम पानी बाल, आँखोंके लिए हानिकारक है। इसलिए सम्भवतः क्वाथ जल ठण्डा करके काममें लाते होंगे।

सुन्दर होता है।[1] तैलका अभ्यङ्ग तथा स्नान सम्बन्धी अन्य कर्म उस समय स्त्रियाँ ही करती थी।

उत्सादन–[**उबटन**]—शरीरपर लगे तैलको उतारनेके लिए उबटन लगाया जाता था, पार्वतीके लिए लोधका उबटन लगाया गया था [**तां 'लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलामाश्यानकालेयकृताङ्गरागाम्—कुमार० ७।९**]। उबटनके लिए हल्दी; सरसों, तिल, वच आदिको पीसकर दूध या पानीमें भिगोकर मलते हैं। जिस उद्वर्त्तनमें तैल मिलाते हैं, वह स्निग्ध होता है, और जिसमें तैल नहीं मिलाते उसे रूखा या पानीमें मिलाकर बनाते हैं, वह रूक्ष होता है।[2]

---

१. स्नेहाभ्यंगाद्यथा कुम्भश्चर्मस्नेहविमर्दनात्।
भवत्युपाङ्गदक्षश्च दृढः क्लेशसहो यथा॥
तथा शरीरमभ्यंगाद् दृढं सुत्वक् च जायते।
प्रशान्तं मारुताबाधं क्लेशव्यायामसंसहम्॥
स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम्।
त्वच्यश्च परमोऽभ्यंगस्तस्मात्तं शीलयेन्नरः॥
सुस्पर्शोचिताङ्गश्च बलवान् प्रियदर्शनः।
भवत्यभ्यङ्गनित्यत्वान्नरोऽल्पजर एव च॥
—चरक सू० अ ५।८५–८९

२. [क] उद्वर्त्तनं कफहरं मेदसः प्रविलापनम्।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक् प्रसादकरं परम्॥
—संग्रह० सू० अ० ३।६७

[ख] तिलसर्षपरजनीद्वय कुष्ठकृतोद्वर्त्तनानि भजमानाः।
कान्ति हसन्ति हेम्नो बिभ्रति सौरभ्यमधिकं च॥

शरीरका मलना—स्नान करते समय शरीरको हाथोंसे तथा दूसरी वस्तुओंसे मला जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्यके शरीरको आबनूसके चौकोंसे मला जाता था।[1] विनयपिटकमें स्नानके समय रगड़नेके लिए कई द्रव्यों का उल्लेख आया है। इनमें कुरुविन्दक, मल्लक अथवा कपड़ा ऐंठकर उसका उपयोग किया जाता था।[2]

स्नानके लिए परिचारिकायें—स्नानका सब कार्य स्त्रियाँ ही सम्पादित करती थी; यथा—

१—अंशुकनिबिड़निबद्धस्तनपरिकराः दूरसमुत्सारितवलयबाहुलताः समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः कर्णोत्संगोत्सारितालिकाः, गृहीतजलकलसाः स्नानार्थमभिषेक देवता इव वारयोषितः—कादम्बरी।

निम्बारग्वधदाडिमशिरीषकल्कैः स्त्रीणाम्।
रजनीयुतमुस्तैः स्यादङ्गानां सुन्दरो रागः॥
वितुषयवचूर्णयष्टी मधुसितसिद्धार्थलोध्रलेपेन।
स्त्रीणां भवन्ति नियतं वरकांचनतुल्यानि वदनानि॥

—कामकुञ्ज पृष्ठ ३८६

१. राजा अपने शरीरको आबनूसके चौकोंसे जब मलवाता था, तब भी वह प्रजाके अभियोग सुनता था।

—प्राचीन भारतका इतिहास; डा० त्रिपाठी।

२. भिक्षुओ! कुरुविन्दसुत्ति [कुरुविन्दकशुक्ति] से नहीं नहाना चाहिये [कुरुविन्दक पत्थरके चूर्णको लाखसे पिण्डी बाँध गुलियाँ बनाई जाती थीं, जिससे नहाते समय शरीरको रगड़ा जाता था]। षड्वर्गीय भिक्षु मल्लक [मकरकी नाकको काटकर बनाया] से नहाते थे। जैसे कामभोगा गृहस्थ।

भिक्षुओ! मल्लकसे नहीं नहाना चाहिए।

२—स्नातुं ते परिचारिकाः स्तनभरश्रान्ताः शनैः साम्प्रतम् ।

जीवानन्दनम् ४।११ ।

३—अनन्तरमुत्तुङ्गकनककुम्भ शोभास्पर्द्धि कुचमण्डलार्द्धबद्धोत्तरीयांशुकपरिकराः सस्मरस्मितविकासकारिण्यः दर्शितसीत्काराङ्गमलनविन्यासाः, काश्चित्समुद्रवेला इव समकरोत्क्षिप्तामलकाः, काश्चित्तरुणतरुमंजरीराजय इव भृङ्गारभरभुग्नदेहाः, काश्चिदन्यायकारिण्य इव सभाजनोद्धूलनकराः, काश्चिन्मलयाचलभूमय इवोत्कृष्टगन्धधारितैलाः, काश्चिद्, देवलोकवसतय इव चामरधारिण्यः, काश्चिद् पुरंदरपुरंन्ध्रिका इव सविभ्रमकङ्कतिकोपान्तेन केशप्रसादनमाचरन्त्यः; काश्चिद् विन्ध्याटव्य इव दर्शितविविधपादपालिकाः, काश्चिद् राघवसेना इव कृतप्रहस्तमलनाः काश्चिद्व्याकरणवृत्तय इव बाहुलतां संवाहयन्त्यः, मज्जननियुक्ताः कामिन्यो राजानं स्नपयामासुः ॥—नलचम्पू ३ ।

कौटिल्य अर्थशास्त्रमें भी स्नान, संवाहन, आदि कार्योंको स्त्रियोंसे करानेका उल्लेख है [स्नानसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्मदास्याः कुर्युः—अर्थशास्त्र-विनयाधिकारिक १।२८]।

१. कुछ स्त्रियोंने अपने अंचलके द्वारा कुचोंको दृढ़तासे बांध लिया; हाथके कंगन निकालकर रख दिये, कानके लटकते हुए कर्णफूलको ऊँचा कर लिया, आँखें ढँप न जाये इसलिए कानके समीपकी लटोंको पीछे कर

उस समय बुढ़ापेसे एक कमजोर भिक्षु नहाते समय स्वयं अपने शरीरको नहीं रगड़ सकता था। भगवान्से यह बात कही।

भिक्षुओ, अनुमति देता हूँ; दुक्कासिका की [कपड़ा ऐंठकर बनाया रगड़ने का कोड़ा]।

उस समय भिक्षु पीठ रगड़नेमें हिचकते थे।

भिक्षुओ, अनुमति देता हूँ हाथसे रगड़नेकी।

—विनयपिटक क्षुद्रक, वस्तुस्कन्धक ५।१

लिया, जलसे भरे कलशोंको लेकर अभिषेककी भाँति महाराज शूद्रकको स्नान करानेके लिए आगई।

२—आपको स्नान करानेके लिए स्तनोंके भारसे थकी सेविकायें उपस्थित हो गई हैं।

३—इसके पीछे सोनेके बड़े-बड़े कलशोंके साथ स्पर्द्धा करनेवाले कुचोंको अपने आंचलसे बाँधकर, मुसकराती हुई स्त्रियाँ राजाके स्नानके लिए आई। कोई स्त्री सीत्कारके साथ राजाके अंगोंको मलती थीं, किसीने स्नानके लिए उपयोगी आँवलेके चूर्णको समुद्रकी लहरके समान हाँथोंमें उठा रखा था, जिस प्रकार कोमल वृक्ष मंजरीके भारसे झुक जाता है, उसी प्रकार किसी स्त्रीका शरीर भृङ्गार-गंगासागरके भारसे झुका हुआ था; अन्याय करनेवालेके समान किसी स्त्रीने हाँथोंमें उद्वर्त्तन-चूर्णका पात्र ऊँचा उठाया हुआ था। किसीने मलयाचलकी भूमिके समान तीव्र गन्धवाले तैल लिये हुए थे; किसीने स्वर्गलोककी बस्तीके समान चँवर पकड़े हुए थे, जिस प्रकार कि स्त्रियाँ इन्द्रके बालोंको सँवारती हैं; उसी प्रकार कोई स्त्री राजाके बालोंमें कंघीकर रही थी; कोई स्त्री राजाके पैरोंको मलकर उसकी सेवा कर रही थी, कोई हाथोंको सहला रही थी और कोई बाहुओंको मल रही थी; इस प्रकार स्नान कार्यमें नियुक्त सेविकायें राजाको स्नान करा रही थी।

अनुलेपन

स्नानके पीछे शरीरपर अंगराग-चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंका लेपन आवश्यक है। क्योंकि पसीनेकी दुर्गन्ध इसीसे कम होती है। इसलिए सुगन्धित द्रव्योंका लेप किया जाता था, यथा—

१—"उपरचितपशुपतिपूजनश्च निष्क्रम्य देवगृहान्निवर्त्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारिभिरलिकदम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमद-कर्पूर-कुंकुमवाससुरभिणाचन्दनेनानुलिप्तसर्वाङ्गः विरचितामोदमालती कुसुम-शेखरः..."—कादम्बरी-शूद्रक नित्यकर्मवर्णनम्।

२—कृतदेवतार्चनस्य अंगरागभूमौ समुपविष्टस्य राज्ञा विसर्जिता महाप्रतीहाराधिष्ठिता राजकुलपरिचारिकाः कुलवर्धनासनाथाश्च विलासवतीदास्यः ......पटलक विनिहितानि विविधान्याभरणानि मांगल्याङ्गरागान् वासाँसि चादाय पुरतस्तस्योपतस्थुः उपनिषन्युश्च। यथाक्रममादाय च ताभ्यः प्रथमं स्वयमुपलिप्य वैशम्पायनमुपचितांगरागो दत्त्वा च समीपवर्त्तिभ्यो यथार्हमाभरणवसनाङ्गरागकुसुमानि—कादम्बरी चन्द्रापीडविभ्रमादि वर्णन।

देवमन्दिरमें जाकर शंकरकी उपासना करके, वहाँसे विलेपन स्थानमें जाकर कस्तूरी, कर्पूर और केसरकी सुगन्धिसे अतिशय सुगन्धित चन्दन द्वारा सारे शरीरको लिप्त किया, उस समय भ्रमर गण सुगन्धिके लोभसे उस चन्दनका अनुसरण करने लगे। इसके बाद सिरपर सुगन्धित मालती पुष्पको धारण किया।[1] २—देवताकी पूजाके उपरान्त चन्द्रापीड़ अंगराग शालामें आकर बैठा, तब वहाँ प्रधान द्वारपालको आगे करके महाराजके भेजे राजकुलके सेवक, कुलवर्धना सहित विलासवतीकी दासियाँ एवं अन्यान्य रानियों द्वारा भेजी हुई अन्तःपुरकी दासियाँ, पेटियोंके अन्दर रक्खे हुए आभूषण, अंगराग द्रव्य और वस्त्र लेकर चन्द्रापीड़के सामने उपस्थित हुईं। इन वस्तुओंको उसे भेंट दीं। चन्द्रापीड़ने उनमेंसे एक वस्तु लेकर पहिले

---

१. फूलोंका धारण करना शुभ है—

वृष्यं सौगन्ध्यमायुष्यं काम्यं पुष्टिबलप्रदम्।'
सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नं गन्धमाल्यनिषेवणम्॥

—चरक०सूत्र०अ० ५।९६

पार्वतीका प्रसाधन भी स्नान के पीछे ही सुहागिनी स्त्रियोंने किया था—"विन्यस्तशुक्लागुरु चक्रुरङ्गं गोरोचनापत्रविभक्तमस्याः।
सा चक्रवाकाङ्कितसैकतायाः त्रिस्रोतसः कान्तिमतीत्य तस्थौ॥"

—कुमार० ७।१५

अपना प्रसाधन किया और फिर स्वयं ही वैशम्पायनके शरीरपर अंगराग लगाया। समीपमें बैठे राजाओंको वस्त्र, आभूषण-अंगराग आदि दिये।

मानसोल्लासमें स्नानगृह और स्नान विधिका बहुत सुन्दर उल्लेख है—

काञ्चनस्तम्भरुचिरं स्फुटत्स्फटिकवेदिकम्।
काचकुट्टिमशोभाढ्यं दरदाक्लिष्टभित्तिकम्॥
चीनपट्टवितानेन चित्रेण परिशोभितम्।
वरुणस्य वितानेन स्पर्धमानं स्वतेजसा॥
तत्र स्थित्वा महीपालः स्नानभोगमथाचरेत्।
केतकीबहलामोदैर्जातीपरिमलोत्करैः॥
पुन्नागचम्पकोद्दामगन्धसंवासितैस्तिलैः।
यंत्रसम्पीडितैस्तैलं गृहीत्वाऽभ्यंगमाचरेत्॥
कोष्टं पटोलकं मुस्ता ग्रन्थिपर्णं निशाद्वयम्।
पालकं तगरं मासं [सी] वाजिगन्धा च पुष्करम्॥
एषां मूलानि संगृह्य छायाशुष्काणि कारयेत्।
निम्बस्य राजवृक्षस्य तुलस्याश्चार्जकस्य च।
पत्राण्येषां समाहृत्य प्रागुक्तैः सह लेपयेत्।
एला जाती सर्षपाश्च तिलाः कुस्तुम्बुराण्यपि।
बाकुचीचक्रमर्दश्च बीजान्येषां समाहरेत्।
लवंगं पद्मकं लोध्रं श्रीखण्डं सुरदारु च।
अगरुं सरलं चैव काष्टान्येतानि निक्षिपेत्।
नागकेसरपुन्नागकान्ता [न्त] कुङ्कुमचम्पकम्॥
पुष्पाण्येतानि सम्पेष्य पयसा कांजिकेन वा।
अभ्यक्तगात्रो नृपतिरुद्वर्त्तनमाचरेत्॥
अधुना स्नेहनिवृत्या [त्यै] सुगन्धा कथ्यते खली।
आरनालसुसंसिद्धगोधूमश्लक्ष्णचूर्णकैः॥

मदनस्य च मूलेन चूर्णितेन विमिश्रिता ।
स्नेहापनयने योज्या पिशुनेनोत्तमा खली ॥
नानातीर्थाहृतैस्तोयैर्विमलैर्मलहारिभिः ।
सुगन्धवासनायुक्तैः सुखोष्णैः स्पर्शसौख्यदैः ॥
एभिरापूरितैः पात्रैः लोहकर्पूरगादिभिः ।
कलशैः काञ्चनोत्पन्नैः कान्तैः कान्ताकरोत्थितैः ॥
शातकुम्भमयैः कुम्भैः राजद्भिरपि राजतैः ।
करिकुम्भयुगप्रख्य पयोधरविडम्बिभिः ॥
चन्द्रकान्तिमुखाभासाः परिपूर्णपयोधराः ।
स्त्रलावण्यतरंगिण्यः प्रत्यक्ष जलदेवताः ॥
मेघकान्ता इव श्यामाः कान्ता कनकविद्युतः ।
अभिषेकाम्बुधारोत्थ स्फुरत्स्तनितविभ्रमाः ॥
इतस्ततः पर्यटन्त्यः समाः सौम्या वरस्त्रियः ।
स्नपनं नृपतेः कुर्युस्तन्मुखाहितदृष्टयः ॥
सुगन्धामलकैः श्लक्ष्णैरनुलिप्य शिरोरुहान् ।
तान्यप्यपनयेयुस्ताः सुखोष्णैः सलिलैः पुनः ॥
धूपवासितयात्यर्थं कृतालेपं हरिद्रया ।
ईषच्छीतेन तोयेन रागिण्यो रागहेतवः ॥

—मानसोल्लास २।२३।६२८-५१॥

स्नान गृहके खम्भे सोनेके सुन्दर बने होने चाहिएँ, इसकी चौकी बिल्लौर पत्थरकी बनी हो, दिवारोंपर शीशे लगे हों । वितान चीन वस्त्रसे सजा हो । इसीमें बैठकर राजा स्नान करे । शरीरपर मलनेके लिए सुगन्धित तेल—केवड़ा, चमेली, नागकेशर, चम्पाकी तीव्रगन्धसे सुवासित तिलोंसे कोल्हूके द्वारा तैल निकालकर उससे शरीरपर अभ्यंग करावे । कोष्ट [सम्भवतः कुष्टं-कूठ], परवल, मुस्ता, पिप्पलामूल, हल्दी, दारु हल्दी, पालक, तगर, जटामाँसी, असगन्ध, पुष्करमूल, इनकी जड़ें लाकर

छायामें सुखाये। नीम, अमलतास, अर्जक इनके पत्ते भी इसमें मिला दे। इलायची, चमेली, सरसों, तिल, धनिया, बाकुची, पनवाड़, इनके बीज, लौंग, पद्माख, लोध, देवदारु, अगर, साल इनकी लकड़ी मिलाये। नागकेसर, प्रियंगु, हल्दी, केसर, चम्पा इनके फूलोंको दूध या काँजीसे पीसकर राजाके शरीरपर उबटन मले। तेलकी चिकनाई दूर करनेके लिए सुगन्धित खली बरते। गेहूँके बारीक आटेको काँजीमें मिलाये, इसमें मैनफल की जड़ मिलाकर शरीरपर इस खलीको लगाये। स्नानका पानी—नाना तीर्थोंसे लाये हुए निर्मल एवं सुवासित [गुनगुने-शरीरके लिए सुखदायक] पानीसे भरे स्वर्ण एवं चाँदीके पात्रोंसे स्त्रियाँ स्नान करायें। स्नानके समय शिरपर बारीक पिसा आँवला लगायें। इसको सुहाते गरम पानीसे धो देना चाहिए। फिर हल्दीका लेप लगाकर कुछ ठण्डे जलसे राजाको स्नान करायें।

स्नान कार्य बहुत देर तक होता था। स्नानके लिए द्रोणी और चौकी दोनों रहते थे। राजा कुछ देर द्रोणीमें-[टबमें] भी बैठता था।

[**द्रोणी सलिलादुत्थाय च स्नानपीठममल स्फटिक धवलं वरुण इव राजहंस मारुरोह—कादम्बरी**]। द्रोणीमें बैठनेसे उसकी थकान दूर होती थी। स्नान के लिये गुनगुना पानी था। शरीरपर मलनेके लिये उबटन और तैल; शरीर मलनेके लिए हाथीदान्त या आबनूसके चौके होते थे। स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र पहिना जाता था। [**एवं क्रमेण**

निर्वर्त्तिताभिषेको विषधरनिर्म्मोकपरिलघूनिधवले परिधाय धौते वाससि—कादम्बरी]। छाती-पीठपर अंगराग लगानेके बाद ही वस्त्र पहिना जाता था।

जातकोंसे पता लगता है कि राजाके प्रसाधन कार्यके लिए विशेष नाई [मंगल नापित] रहता था, जो कि राजाके प्रसाधन, वेश तथा केशोंका ध्यान रखता था।[1] उसके स्नानके लिए सुगन्धित जल तैयार करता था। प्रसाधनमें माला-गन्ध-विलेपन-धारण-मण्डल-विभूषण-इन सब कार्योंका समावेश है; ये सब कार्य स्नानके पीछे किये जाते थे, इसलिए स्नानका ही एक अंग हैं।

चन्दनके लेपके लिए अत्रिपुत्रने कहा है—

"चन्दनं दुर्गन्धहरदाहनिर्वापणलेपनानां श्रेष्टतमः"

——चरक सूत्र० अ० २५।४०।

चन्दनका लेप दुर्गन्ध दूर करनेमें तथा दाह शान्ति करनेवाले द्रव्योंमें सबसे सर्वश्रेष्ठ है, इसलिए चन्दनका लेप किया जाता था।

---

१. जातक० १–१३७।१०८; ३–४५१; ४–३६५।

प्रास्ताविकम्

प्रसाधन परम्पराका ऐतिहासिक विवेचन-मुख्यतः डाक्टर श्रीमोतीचन्द्र जी ने अपने निबन्ध "Cosmetics and Coffure in ancient India. में किया है। यह निबन्ध मुझे उपयोगी लगा और इसके महत्त्वको देख-कर ही यह भी आवश्यक लगा कि पाठकोंके सामने यह पृष्ठभूमि उपस्थित की जाय।

इसमें कालके अनुसार प्रसाधन सामग्रीका उल्लेख है, प्राय: यह सामग्री सब कालोंमें एक-सी है और उसका एक प्रकारका ही उपयोग है, यथा आँखोंमें अंजन और शरीरपर अंगराग लगाना। ये वस्तुएँ क्योंकि शरीरके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी उपयोगी हैं, इसलिए सब कालोंमें इनका उपयोग मिलता है; परन्तु कालके साथ साथ रुचिकी भिन्नता भी स्पष्ट होती है। उदाहरणके लिए गुप्तकालमें प्रसाधन कार्य जिस चरम सीमापर पहुँचा था उतना उसके पूर्व कभी नहीं पहुँचा। बालोंकी रचनाके ढंग जितने इस कालमें मिलते हैं, उतने पहिले नहीं मिलते।

यह सब होने पर भी प्रसाधनकी रुचि और उसका तरीका इस विवे-चनासे स्पष्ट हो सकेगा; इसीलिए इसका भी समावेश किया है। सामग्रीका अधिक संकलन डाक्टर मोतीचन्द्रजीके लेखसे हुआ है; इसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। केश-विन्यासकी सामग्रीमें डाक्टर वासुदेवशरणजी अग्रवालकी पुस्तक **कला और संस्कृति** से भी सहायता ली है, इसलिए मैं उनका भी आभार स्वीकार करता हूँ।

स्नान तो उसका ब्रह्मचर्य कालमें भी होता था, प्रतिदिन स्नान करता था, परन्तु इस समयका स्नान उस समयके स्नानसे भिन्न है; अब उसे तैल, उबटन, कंघा, दर्पणका उपयोग, सुगन्धका लगाना सब करणीय होता है; जो ब्रह्मचर्याश्रममें सर्वथा वर्जित थे। इस समय—

"सुगन्धादि औषधयुक्त जलसे भरे हुए आठ घड़े वेदीके उत्तर भागमें जो पूर्वसे रक्खे हुए हों उनमेंसे—

"**ओं ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहाऽस्खलो विरुजस्तनूदूषुरिन्द्रियहा तान् विजहामि। य रोचनस्तमिह गृह्णामि —पार० का० २। कं० ६। सू० १०।**

इस मंत्रको पढ़, एक घड़ेको ग्रहण करके उस घड़ेमें से जल लेके—

ओं तेन मामभिषिञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय—पार० कां० २। कं० ६। सू० ११।

इस मन्त्रको बोलकर स्नान करना।

स्नान करनेके पीछे जटा, लोम, नखको कटवाता था। फिर उदुम्बरकी दातुन करके स्नान करता था। धोती और पीताम्बर पहिनकर सुगन्ध युक्त चन्दनादिका अनुलेपन करता था। पीछेसे—

ओं परिधास्यै यशोधास्यै, दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।
शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये॥
—पार० कां० २। कं० ६।२०।

इस मंत्रके साथ सुन्दर वस्त्र धारण करता है। सुगन्धित माला तथा अलंकार भी धारण करता है।

अंजन लगाना—अलंकार और वस्त्र धारण करनेके बाद होता है—

ओं वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि।
—यजु० अ० ४ मं० ३। पार० कां० २। कं० ६।२७।

इस मंत्रसे आँखोंमें अँजन करे ऐसा विधान है।[1]

अंजन और वृत्रका परस्पर सम्बन्ध है। वृत्रकी आँखसे अंजन बना है। वाजसनेयी संहिता [४।३] में अंजनको वृत्रकी आँखकी पुतली कहा है। अंजनकी उत्पत्तिकी कथा शतपथ ब्राह्मण [६-३-१२] में है। उसमें लिखा है कि अंजन त्रिककुद पर्वतसे आता है, [इसे आजकल त्रिकूट कहते हैं—जो पंजाबके उत्तर और काश्मीरके दक्षिणमें है।[2]]। इन्द्रने वृत्तको मारकर इसी त्रिककुद् पर्वतपर फेंक दिया था; इसकी आँख अलग जाकर गिरी—जो सुरमा बन गई। यही कारण है कि त्रिककुद्का सुरमा आँखमें लगाया

---

१. स्नानके पीछे जिस प्रकार आज प्रसाधन किया जाता है, उसी प्रकार प्राचीन कालमें भी प्रसाधन-सुगन्धका उपयोग था। सिन्धुघाटी की खुदाईमें मिली सुरमेदानी तथा सलाई इस बातका प्रमाण है कि स्त्री और पुरुष इसे बरतते थे। एक बर्त्तनके अन्दर काला पदार्थ मिला है। मोहेंजोदड़ोमें मिली सुरमेदानियोंका मुख प्रायः टोंटीदार है, इससे स्पष्ट है कि एक तश्तरीमें सुरमा डालकर उसकी पेस्ट घी या तेलमें बनाकर आँखोंमें लगाई जाती थी। सुरमेदानी धातुकी भी मिली हैं। ये भिन्न-भिन्न आकारकी हैं। ताम्बे और काँसीकी सलाईयाँ मिली हैं; परन्तु अधिक लकड़ीकी बनी सलाई मिली हैं। धातुकी सलाई ४·४ से ५·५ इंच लम्बी हैं। इनके दोनों किनारे कुछ गोल हैं; डा० मोतीचन्द्रजीके लेखसे।

२. [क] पाणिनिके 'त्रिककुत्' पर्वते—५।४।१०७ सूत्रमें तीन चोटीवाले पर्वतका नाम है। इस पर्वतमें अंजन—सुरमा उत्पन्न होता था, जिसको त्रिककुद अंजन कहते थे। यह भी हिमालयकी किसी एक चोटीका नाम है। कीथने इसकी पहिचान 'त्रिकोट' से की है; जो कि उत्तरी पंजाब और काश्मीरकी चोटी थी। किन्तु अधिक सम्भावना सुलेमान पर्वतकी है, जो अंजन या सुरमेका उत्पत्ति स्थान था और आज भी है। सुले-

जाता है। आँखको आँखमें लगाते हैं [तुलना कीजिए—सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्—चरक; रक्तसे रक्त बढ़ता है "धातवः खलु शरीर-समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाऽऽहारविहारैरभ्यस्यमानैः वृद्धिमाप्नुवन्ति। ह्रासं तु विपरीतैः विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वा तस्मादन्येभ्यो द्रव्येभ्योऽपि सुतरां रक्तमाप्यायते रक्तेन मांसं मांसेन।" संग्रह. सू. अ. १६।१४]। अंजन एण्टीमनीका धातु है [ore]। वाजसनेयी संहितामें पुतलीके रंगसे अंजनकी तुलना की गई है।

काला अंजन आज भी हिमालयके बहुतसे भागोंमें मिलता है। यमुना

मानके समानान्तर श्रीनगरकी पर्वतश्रृंखला है, झोब [यह्ववती] नदीके पूर्व दोनोंके पीछे टोवा और काकड़की श्रृंखलायें हैं। पर्वतोंकी यह तिहरी दीवार ठीक ही त्रिककुद कहलाती थी [जयचन्द्र विद्यालंकार-भारतभूमि पृ० १२६]। यहीं त्रैककुद अंजन प्राप्त होता था। महाभारत के अनुसार वाह्लीक [पंजाब] की गोरी स्त्रियाँ मनसिलके समान चमकीले अपांगयुक्त नेत्रोंमें त्रिककुदका अंजन डालती थीं [कर्णपर्व ४४।१८]। आज भी सुलेमानी सुरमा एक ओर पंजाबमें और दूसरी ओर सिन्धमें दूर दूर तक जाता है। सिन्धके लोगोंमें यही सौवीर अर्थात् उत्तरी सिन्धकी ओरसे आनेका कारण सौवीराञ्जन कहलाता था—पाणिनि कालीन भारतवर्ष—डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल; [त्रिकूटमेव तत्रोच्चै-र्जयस्तम्भं चकार सः—रघुवंश-४।५९ इसी त्रिकूटको त्रिककुद कहते हैं]।

[ख] सुरमा—एन्टीमनीका समास है, परन्तु सीसकके समाससे भी सुरमा बनाया जाता है। सीसकके कच्चे रूपमें ताम्र,जस्ता,एन्टीमनी मिला रहता है, भारतमें यह चितराल, सवाईमाधोपुर और जयपुरमें मिलता है। अंजन—विशेषतः एन्टीमनी सल्फाईड है, प्रायः इसका भ्रम लैड सल्फाईड़से होता है। प्राचीनकालमें इन दोनोंमें विशेष भेद नहीं था; डाक्टर सत्यप्रकाशजी, डी० एस०-सी०।

को भी इसका उत्पत्ति स्थान कहा जाता है। आँखमें अंजन लगानेके अतिरिक्त पाण्डु, यक्ष्मा आदि रोगोंमें भी अंजनका उपयोग होता है [**प्रवालमुक्तांजनशंखचूर्णं लिह्यात्तथा काञ्चनगैरिकञ्च—सुश्रुत चि. अ. ४४।२१**]। अंजनका महत्त्व इतना अधिक था, इसको बनानेवाले 'अंजनकारी' के नामसे पुरुषमेध प्रकरणमें स्मरण किये गये हैं [वाजसनेयी ४-५-३]।[1]

अंजन लगानेके बाद ब्रह्मचारी को—

"ओं रोचिष्णुरसि'—पार० कां० २। कं० ६।२८.

यह मन्त्र बोलकर दर्पण दिखाया जाता है।

प्रसाधनके लिए दर्पण एक आवश्यक साधन है; यह दर्पण प्रायः उन्नतोदर होता था; जैसा कि भुवनेश्वरके मन्दिरमें प्रसाधन करती हुई स्त्री के हाथमें दिखाया है [देखिये—पुस्तकके आवरणका चित्र]। उन्नतोदर दर्पणमें एक-एक वस्तु सूक्ष्म रूपसे दीखती है। शिवने पार्वतीके प्रसाधनके लिए मणिका दर्पण सामने किया था—

---

१. अंजनका लाभ

सुखं लघु निरीक्षेत दृढं पश्यति चक्षुषा।
मतं स्रोतोऽञ्जनं श्रेष्ठं विशुद्धं सिन्धुसम्भवम्॥
दाहकण्डूमलघ्नं च दृष्टिक्लेदरुजापहम्।
तेजोरूपावहं चैव सहते मारुतातपौ॥
न नेत्ररोगा जायन्ते तस्मादञ्जनमाचरेत्॥

—सुश्रुत० चि० अ० २४।१७–१९.

पक्ष्मलं विशदं कान्तममलोज्ज्वलमण्डलम्।
नेत्रमञ्जनसंयोगात् भवेच्चामलतारकम्॥

पार्वतीका प्रसाधन

दर्पणमें मुख-छवि
[उत्तर मध्यकाल १०-११वीं शती]

भस्मानुलिप्ते वपुषि स्वकीये सहेलमादर्शतलं विमृज्य ।
नेपथ्यलक्ष्म्याः परिभावनार्थमदर्शयज्जीवितवल्लभां सः ॥
प्रियेण दत्ते मणिदर्पणे सा संभोगचिह्नं स्ववपुर्विभाव्य ।
त्रपावती तत्र घनानुरागं रोमाञ्चदम्भेन बहिर्बभार ॥

—कुमार० ६।२८–२६

शिवजीने प्रसन्न होकर अपने भस्म लगे हुए शरीरपर दर्पण रगड़कर पोंछा और फिर सिंगारकी सजावट दिखानेके लिए वह दर्पण पार्वतीके आगे कर दिया। शंकरजीके हाथसे दिखाये हुए उस दर्पणमें अपने शरीर पर बने हुए सम्भोग-चिह्न देखकर लज्जाके मारे पार्वतीको रोमांच हुआ, इससे प्रकट होगया कि वे शंकरजीसे कितना प्रेम करती हैं।

शिरके बालोंको बाँधने, वेणी या कबरी बनाने अथवा प्रसाधनके लिए दर्पण एक आवश्यक वस्तु है। प्राचीन खुदाईमें तीन दर्पण मिले हैं, जिनमें दो पूरे हैं, और एक छोटा है, एक दर्पण अण्डाकार काँसाका बना है। इसकी पालिश पूर्णतः नष्ट हो गई है।[1]

अन्य सामग्री—प्रसाधनमें कंघी और उस्तरेका भी उपयोग आवश्यक है। अत्रिपुत्रने नागरिकके वेशके लिए—"**प्रसाधितकेशः**" सँवारे हुए बाल [चरक० सू० अ० ८] विशेषण दिया है। इसीलिए स्नातक होनेपर उसे बालोंमें कंघी करनी होती थी अर्थात् उस दिनसे उसे बाल सँवारकर रखने चाहिएँ; [**केशप्रसाधनी-केश्या रजोजन्तुमलापहा; सुश्रुत चि० अ० २४।२८**][2]।

---

१. डा० मोतीचन्द्रजीका लेख

२. कवि माघने शिशुपालवध काव्यमें कंघीका उल्लेख किया है; यथा—
विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिका विधित्सया नूनमनेन मानिना ।
न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति ॥
—माघ० १।६०.

प्राचीन खुदाईमें कुछ कंघियाँ मिली हैं, इनमें एक कंघीका आकार

'वी' (V) का-सा है, इसके दाँते बहुत बारीक हैं। सम्भवतः बहुत बारीक दाँतोंसे जूँ आदि निकालते थे। कंघीका दूसरा प्रयोग बालोंको सँवारनेका था। हाथीदाँतकी आयताकार कंघी भी मिली है, जिसके दोनों ओर दाँतें हैं[२]।
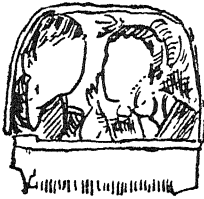
काष्ठजा धातुजा चैव श्रृंगजाता यथाक्रमम्।
गुरुता लघुता चैव तथा घनशलाकता॥
मनोहरत्वमुदितं प्रसाधन्या गुणग्रहः॥

कंघीके अतिरिक्त उस्तरेका उपयोग बाल साफ करनेमें होता था।

वैदिक संस्कारोंमें चूड़ाकर्म एक संस्कार है, उसमें उस्तरेसे बाल मूँडे जाते हैं; यथा—

ओं यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि केशान् शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषी। आश्व० १।१७।१५।

ओं येनावपत्सविताक्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। अथर्व० का० ६ सू० ६८ मं ३.; आश्व० १।१७।१०.

मोहेंजोदड़ोंकी खुदाईमें एक उस्तरा २.३ इंच लम्बा और गोल तेज एवं धारवाला मिला है, इसके सिरे पर दो छेद हैं, जिससे स्पष्ट है कि यह दस्तेमें

---

२. डा० मोतीचन्द्रजीका लेख—

उस्तरे और कैंचीका उपयोग सुश्रुतमें भी है, यथा—

रोमाकीर्णो व्रणो यस्तु न सम्यगुपरोहति।
क्षुरकर्त्तरिसंदंशैस्तस्य रोमाणि निर्हरेत्॥

—सुश्रुत अ० १।१०४.

जुड़ा था। खुदाईमें बहुतसे धातुके औजार मिले हैं, जिनमें कुछ उस्तरे भी प्रतीत होते हैं। जो शिर तथा शरीरके दूसरे भागोंसे बाल साफ करनेके काम आते थे। उस्तरे कई प्रकारके मिले हैं यथा—

१. दोनों तरफ धारवाले उस्तरे—ये प्रायः ताँबेके हैं, इनका फलक बहुत पतला और अण्डाकार एवं नोकदार है। उस्तरेकी दोनों धारें एक जैसी नहीं हैं, जिससे सम्भवतः प्रत्येक धारका उपयोग भिन्न-भिन्न था।

२. अंग्रेजीके एल अक्षर [L] के आकारके उस्तरे—एक भुजा दूसरी भुजासे अधिक लम्बी और अधिक चौड़ी।

३. हुकके आकारका उस्तरा—इसके दो नमूने मिले हैं, इनमेंसे एक का दस्ता सारस या हंसके समान है, इसकी धार तेज है, किनारेपर चौकोर है, जहाँ यह दस्तेसे जुड़ता है वहाँ पर भी बाहरकी ओर इसमें घुमाव है।

४. सादा फलक—ये ताँबेके बने हैं, इनके किनारे चौकोर हैं, जो कि कोनोंपर गोलकर दिये गये हैं[1]।

सुगन्ध—स्नातक होनेके समय शरीरपर लगानेके लिए सुगन्ध भी आचार्य ही देता था[2]। यह सुगन्ध चन्दन, गोरोचन आदिके रूपमें बरती

---

१. डाक्टर मोतीचन्द्रजीका लेख।

२. इत्रका उपयोग किस रूपमें होता था, यह स्पष्ट नहीं, परन्तु माला-स्रग् [मोटी माला] आदिका उपयोग सुगन्धके लिए या अलङ्कार रूपमें होता था।

सुश्रुतमें एक तैल दिया है—जिसमें तिलोंको सुगन्धित द्रव्योंके साथ फेरकर तैल बनानेका उल्लेख है; यथा—

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि तैलं भग्नप्रसाधकम्।
रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले॥
दिवा दिवा शोषयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत्।
तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेद् मधुकाम्बुना॥

जाती थी। सुगन्धित तैल या इत्रका उपयोग किस प्रकार होता था, यह स्पष्ट नहीं है। इसके सिवाय गुग्गुलु, भद्रमुस्ता, नलद आदि सुगन्धित द्रव्य भी उपयोगमें आते थे। शरीरपर इनका लेप किया जाता था।

समावर्त्तन संस्कारमें ब्रह्मचारी प्रसाधन करके आचार्य कुलसे जब घर आता है तब उसे सब लोग देखनेके लिए आते हैं [**स जातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते। अथर्व० कां० ११ सू० ५ मं २६**]। इसी प्रकारका प्रसाधन विवाह संस्कारमें किया जाता है। पार्वतीका संस्कार-प्रसाधन सौभाग्यवती स्त्रियोंने किया था। [**तस्याः शरीरे प्रतिकर्म चक्रुर्बन्धुस्त्रियो याः पतिपुत्रवत्यः—कुमार० ७।६**]

ब्रह्मचर्याश्रममें ही प्रसाधन कार्यपर प्रतिबन्ध था, परन्तु स्नातक बन जाने पर उसे प्रसाधनके लिए उत्साहित किया जाता था। गृहस्थाश्रममें उसे सुखपूर्वक प्रसाधनका उपयोग करनेके लिए प्रोत्साहित किया जाता था। इस प्रकार वैदिक कालका जीवन शुष्क नहीं था, उसमें भी रस था, और जीवनका सुखपूर्वक उपयोग नागरिक बनकर करनेकी शिक्षा दी जाती थी। जिसकी साक्षी वैदिक साहित्यके सिवाय प्राचीन खुदाईसे मिलती है जिसमें कि प्रसाधन सामग्रीका उपयोग होता हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है।

ततः क्षीरं पुनः पीतान् संशुष्कांश्चूर्णयेद् भिषक्।
काकोल्लादि सयष्ट्याह्वं मंजिष्ठां सारिवां तथा॥
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम्।
शतपुष्पां च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत्॥
पीडनार्थं च कर्त्तव्यं सर्वगन्धश्रृतं पयः।
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेद् भिषक्॥

—सुश्रुत० चि० अ० ३।५५–६०

आजकल फुलेल बनाते समय तिलोंको सुगन्धित फूलोंसे सुवासित करके उनके साथ कोल्हूमें पीड़कर तेल-फुलेल निकालते हैं।

बौद्धकाल

वैदिक कालके अनन्तर बौद्धकाल [६४२ से ३२० ईसा पूर्व] के विषयमें जानकारी जातक एवं विनयपिटकसे मिलती है। राजाके स्नान एवं प्रसाधनके लिए एक विशेष नापित नियुक्त था [मंगलनापित]। जो राजाका प्रसाधन करता था और शरीरपर सुगन्धित लेप आदि भी लगाता था। राजा बहुत ही सुन्दर एवं कीमती वस्त्र धारण करता था।

प्रसाधनसे अभिप्राय पाली साहित्यमें माला-गन्ध-विलेपन-धारण-मण्डन-विभूषणसे है। शरीरको सुन्दर और सुगठित एवं रक्त संचारको ठीक रखनेके लिए शरीरका संवाहन और परिमर्दन आवश्यक है। संवाहनका अर्थ शरीरको दबवाना या चापी भरवाना है, इसमें अंगुलियोंसे एक प्रकारका विशेष संज्ञान उत्पन्न करते हैं। इसीलिए भिक्षुणियोंके लिए संवाहन निषिद्ध था; यथा—

उस समय भिक्षुणियाँ [गायकी जाँघकी] हड्डीसे जांघको मसलवाती थीं, गायके हनुक [नीचेके जबाड़ेकी हड्डी] से पेंडुलीको थपकी लगवाती थीं, हाथ और हाथकी मुसक, पैर तथा पैरके ऊपरका भाग, जांघ, मुख, दांतके मसूड़ेकी थपकी लगवाती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ—

भिक्षुणियोंको हड्डीसे जांघको नहीं मसलवाना चाहिए, गायके हनुकसे पिंडुलीको थपकी नहीं लगवानी चाहिए। हाथ, हाथकी मुसक, पैरके ऊपरी भाग, जांघ, मुख, दाँतके मसूड़ेमें थपकी नहीं लगवानी चाहिए—जो लगवाये उसे दुक्कटका दोष हो"—चुल्लवग्ग १०।४।७।

सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य अपने शरीरको आबनूसके चौकोंसे दबवाता था [डा० रामप्रताप त्रिपाठी]। उस समय मुखपर उबटन लगानेका भी रिवाज था। यथा—

"उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ मुखपर लेप करती थीं, मुखकी मालिश करती थीं, मुख पर चूर्ण डालती थीं, मुखको मैनसिलसे सजाती थी; अंगराग [अरगजा] लगाती थी। लोग हैरान होते थे—जैसे काम-भोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ—

"भिक्षुणियोंको मुखपर लेप नहीं करना चाहिए, मुखकी मालिश नहीं करनी चाहिए, मुखपर चूर्ण नहीं डालना चाहिए, मुखको मैनसिलसे सज्जित नहीं करना चाहिए, अंगराग नहीं लगाना चाहिए। जो लगवाये उसे दुक्कट दोष हो।" चुल्लवग्ग—१०।४।८।[1]

---

१. उत्सादन, उद्घर्षण और उद्वर्त्तन ये तीन कार्य शरीरमें संवाहन क्रियासे होते हैं। उत्सादनसे केवल रंग निखरता है, चेहरेका दिखाव सुन्दर होता है। उदघर्षण—रूक्ष द्रव्योंसे होता है—इससे शरीरकी मेदा कम की जाती है; मेदोवृद्धि कम करनेके लिए उत्तम उपाय है। उद्वर्त्तन—शरीरको दबवाना है। डाक्टर मोतीचन्द्रजीने फेनक-शब्दसे लकड़ीके रोलरसे शरीरका दबवाना अर्थ किया है। फेनकसे शरीर हल्का होता है।

उत्सादनाद् भवेत्स्त्रीणां विशेषात् कान्तिमद् वपुः ॥
तेजनं त्वग्गतस्याग्नेः सिरामुखविवेचनम्।
उद्घर्षणं त्विष्टकया कण्डूकोठविनाशनम् ॥

उद्घर्षणं तु विज्ञेयं कण्डूकोठानिलापहम्।
ऊर्बोः संजनयत्याशु फेनकः स्थैर्यलाघवे ॥

—सु० चि २४।

कामसूत्रमें—फेनकको तीसरे दिन बरतनेके लिए कहा है, यथा—नित्यं स्नानं द्वितीयकमुत्सादनं तृतीयकः फेनकः, चतुर्थकमायुष्यम्, पंचमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम् ॥ कामसूत्र १।१७।

प्राचीनकालमें स्नान क्रिया शरीरके प्रसाधनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण थी। धार्मिक एवं स्वास्थ्य दोनों दृष्टिसे इसका महत्त्व था। राजाका नाई राजाके बाल सँवारनेके अतिरिक्त उसके शरीरपर सुगन्ध लगाता था। सामान्य जन नदी, तालाब या कुओंमें स्नान करते थे। नदीके किनारे घाटोंपर शरीरमें मलनेके लिए मिट्टी, चूर्ण आदि रक्खा रहता था। भिक्षुणियोंको इसे लगाना मना था, यथा—

उस समय भिक्षुणियाँ [स्नानके सुगन्धित] चूर्णसे नहाती थीं। लोग हैरान होते थे जैसे कामभोगिनी स्त्रियाँ—

भिक्षुणियोंको चूर्णसे नहीं नहाना चाहिए, दुक्कट दोष लगेगा। अनुमति देता हूँ कुक्कुट मिट्टीकी—

१—उस समय भिक्षुणियाँ वासित (सुगन्धित) मिट्टीसे नहाती थीं। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ—

"भिक्षुणीको वासित मिट्टीसे नहीं नहाना चाहिए; दुक्कट दोष होगा। अनुमति देता हूँ स्वभाविक मिट्टी की।[1]

—चुल्लवग्ग—१०।६।६।

---

१. सिद्धान्तकौमुदीमें 'कृत्यल्युटो बहुलम्' [३।३।११३] सूत्रका उदाहरण 'स्नानीयम् चूर्णम्' दिया है, जिस चूर्णसे स्नान किया जाये। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन कालमें स्नानके लिए चूर्णका उपयोग होता था।

भरद्वाजके आश्रमका वर्णन करते हुए रामायणमें प्रसाधन द्रव्योंका उल्लेख है यथा—

कल्कांश्चूर्णकषायांश्च स्नानानि विविधानि च।
ददृशुर्भाजनस्थानि तीर्थेषु सरितां नराः॥
शुक्लानंशुमतश्चापि दन्तधावनसंचयान्।
शुक्लांश्चन्दनकल्कांश्च समुद्गेष्ववतिष्ठतः॥

जो लोग पहलवानी करते थे, वे अपने शरीरको–छातीको, जंघाको वृक्षके तनेसे रगड़ते थे—जिससे कि रक्तका संचार सुधरे; इस सम्बन्धमें चुल्लवग्गमें निम्नवचन है—

जब बुद्ध भगवान् राजगृहमें विहार करते थे उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते हुए वृक्षसे शरीरको रगड़ते, थे, जंघाको, बाँहको, छातीको, पेटको भी। लोग खिन्न होते थे, धिक्कारते थे; यह शाक्य पुत्रीय श्रमण नहाते हुए वृक्षसे शरीर रगड़ते हैं; जैसे मल्ल (पहलवान) और मालिश करने-वाले। भगवान्ने भिक्षुओंको सम्बोधित किया—

भिक्षुओ! नहाते हुए भिक्षुको वृक्षसे शरीर नहीं रगड़ना चाहिए। जो रगड़े उसको दुष्कृतकी उत्पत्ति हो।

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते समय खम्भेसे भी शरीरको रगड़ते थे।

भिक्षुओ! नहाते समय भिक्षुको खम्भेसे शरीरको नहीं रगड़ना चाहिए, जो रगड़े उसको दुष्कृति (दुक्कट) की आपत्ति हो।

३—षड्वर्गीय भिक्षु अस्थान (अहवान = काष्ठकी चार पैरवाली बड़ी-बड़ी चौकियाँ; जो घाटपर रक्खी रहती थीं—जिनपर नहानेके सुगन्धित चूर्णको बिखेरकर उनपर लेटकर शरीर रगड़ते थे] पर नहाते थे। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ। भगवान्ने यह बात कही—

भिक्षुओ! आह्वान पर नहीं नहाना चाहिए।

—चुल्लवग्ग—४।५।१

दर्पणान् परिमृष्टांश्च वाससां चापि संचयान्।
पादुकोपानहांश्चैव युग्मान्यत्र सहस्रशः॥
आंजनी कङ्कतान् कूर्चान् शस्त्राणि धनूंषि च॥

—वा० रा० २।९१। ७४–७७।

स्नान करते समय भिक्षु लोग लकड़ीके एक हत्थेसे (गन्धर्वहस्त = गन्दब्ब हस्थ) से शरीरको मलते थे; इसपर सुगन्धित चूर्ण लगा रहता था। वे नहाते समय कुरुविन्दकशुत्ति [कुरुविन्दक सुक्ति = कुरुविन्दक पत्थरके चूर्णको लाखसे पिण्डी बाँध गुल्लियाँ बनाई जाती थीं। जिनसे स्नान करते समय शरीर रगड़ा जाता था] से शरीरको मलते थे। भिक्षु लोग मल्लक [मकरकी नाकको काटकर बनाया] से नहाते थे, । भगवान् बुद्धने इन सब वस्तुओंका उपयोग स्नानमें मना किया था।

—चुल्लवग्ग ५।१।

भिक्षु लोग उस समय केश रखते थे, कंघी और दर्पणका उपयोग करते थे। खली या पानी मिले तेलसे केशोंको चिकना करते थे। भगवान् बुद्धने इन सब वस्तुओंका निषेध किया, उन्होंने दो मासके या दो अँगुल बाल रखनेकी अनुमति दी थी [चुल्लवग्ग ५।३]।

भिक्षु लोग दर्पण अथवा जलसे भरे पात्रमें मुख देखते थे। जैसे कामभोगी गृहस्थ। भगवान् बुद्धने कहा—भिक्षुओ! दर्पण या जलपात्र में मुखके प्रतिविम्बको नहीं देखना चाहिए। पर साथ ही रोग होनेपर इसकी आज्ञा भी दी। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रोग होने पर दर्पण या जलपात्रमें मुखकी छायाको देखनेकी [चुल्लवग्ग ५।३]।

स्नान—नदी या तालाबमें स्नान साधारण था, उसके सम्बन्धमें चुल्लवग्गमें निर्देश है कि उल्टीधारमें अथवा जहाँ घाट न हो वहाँ नहीं नहाना चाहिए [चुल्लवग्ग—१०-६-६; तुलना कीजिए—**न जलाग्रवेगमवगाहयेत् चरक० सू० अ ८; पूर्णनदी समुद्रावििदितपल्वलश्वभ्रकूपावतरणानि परिहरेत्—सुश्रुत-चि० २४।६१**]।

शीतलजलके अतिरिक्त गरम स्नानके लिए 'जन्तकघर' भी थे। इन घरोंको बनानेका विस्तृत उल्लेख चुल्लवग्गमें [५।२।२] दिया है। इनकी सफाईके नियम, पानी बहनेके लिए नाली बनाना, स्नान करते समय

इनमें शोर न करना [१०।६।६] आदि निर्देश स्पष्ट हैं। ये जन्ताक घर भिक्षुओं, भिक्षुणियों तथा सामान्यजनोंके लिए भी उपयोगमें आते थे। मोहेंजोदड़ोंकी खुदाईमें गरम स्नान गृह भी मिला है।

जन्ताकघर केवल गरम स्नानके लिए उपयोगी था, शीतल जलमें स्नान खुले प्राकृतिक जल स्रोतोंमें होता था। जन्ताकघरमें स्नान किस प्रकारसे होता था यह स्पष्ट नहीं। जन्ताकघरमें मकानको गरम रखनेके लिए एक धूमनेत्र [धुँआं निकलनेकी चिमनी] भी होता था। छोटे जन्ताकघरोंमें यह धूमनेत्र एक कोनेमें होता था और बड़े जन्ताकघरोंमें बीचमें। इसमें किवाड़ होते थे, पानी निकलनेके लिए नाली होती थी। इनमें स्नानके लिए चौकी होती थी। बहुतसे भिक्षु इन घरोंमें एक साथ स्नान कर सकते थे। जन्ताकघर तीन प्रकारोंसे बनते थे। ये प्रकार ईंट; पत्थर और लकड़ीसे बनाये जाते थे [चुल्लवग्ग—५।६।२]। भिक्षु अग्निके पास या गरम कमरेमें चौकी-स्टूलपर बैठकर स्नान करते थे।

स्नानगृह समतल भूमिपर बना होता था, इसकी नींव ऊँची होती थी, दीवारें और सीढ़ियाँ बनाई जाती थीं। चेहरेको गरमीसे बचानेके लिए मिट्टीसे पोता जाता था, मिट्टी सुगन्धित होती थी, इसे पात्रमें भिगोया जाता था। स्नान करते समय प्रायः आपसमें झगड़ा होता था; इसके लिए भगवान्‌ने एक नियम बनाया—जो पहिले नहाये वह स्नानघरको साफ करे, राखको बाहर फेंके, स्नानीय चूर्णको बारीक करे, मिट्टीको गीला करे, पानीके वर्त्तनोंमें पानी भरे। बड़े और छोटे दोनों भिक्षुओंके लिए एक जैसी सुविधा थी। यदि सुभीता हो तो बड़े भिक्षुओंको प्रथम विचार करना चाहिए।

जन्ताकघरमें प्रवेश करते समय मुखपर, शरीरके सामने और पीछेके भागपर मिट्टीका लेप कर लेना चाहिए। स्नानके पीछे स्नानकी चौकी हटा देनी चाहिए। उसको ठीक स्थानपर रख देना चाहिए; आगको ढक दें और दर्वाजे बन्द कर दें [चुल्लवग्ग—८।४।२]।

स्नानके लिए चूर्णका उपयोग होता था। भिक्षुणी भी इसको बरतती थी। इसे बन्द करके भगवान् बुद्धने मिट्टीका उपयोग करनेके लिए कहा था। भिक्षुणीके लिए सुवासित मिट्टीका भी निषेध था। [चुल्लवग्ग १०।६।६]

प्रसाधनका द्रव्य अंजन था। जातकसे पता चलता है, उस समय अंजन, शिंगरफ़, हरताल और मैनसिलका ज्ञान था [जातक ५]। इससे स्पष्ट है कि इन वस्तुओंका उपयोग प्रसाधनके लिए होता था। भगवान् बुद्धने भिक्षुओंको काला अंजन, रस अंजन; स्रोत [नदीकी धारमें मिला] अंजन; गेरू और काजलके उपयोगकी अनुमति दी थी। अंजनको रखनेके लिए अंजनदानी, अंजन लगानेके लिए सलाई तथा इन दोनोंको रखनेके लिए बटुएकी आज्ञा दी थी [महावग्ग ६।१।११]

इस समयका जीवन शुष्क नहीं था; सिरपर तेल लगाना : नस्यका नस लेना, धूमवत्ती और धूमनेत्र आदिका उपयोग होता था। ये वस्तुएँ सोना, चाँदी, शंख अथवा अस्थिकी बनती थीं। धूमनेत्र पर ढक्कन रहता था। इनको रखनेके लिए थैली काममें लाई जाती थी। थैलीको लटकानेके लिए कन्धे पर पट्टी लगाई जाती थी। [महावग्ग ६।१।१२-१३-१४]।

कपोल प्रदेश पर चित्रकर्म होता था। आजकल गुदवानेकी जो प्रथा संथाल एव कोल लोगमें मिलती है; यह इसी प्रथाका एक रूप है; ऐसा कई मानते हैं। यह चित्रकर्म मैनसिल या पत्तों द्वारा किया जाता था। पहिले कर्मके लिए भक्ति शब्द और पत्तोंसे किये जाने वाले वैशेषिक प्रसाधनके लिए पत्रभंग शब्दका प्रयोग होता था। मुखपर लेप लगाया जाता था; कभी-कभी इसको रगड़ते भी थे; मुख पर चूर्ण लगाते थे, मुख पर चिकनाई लगाते थे। [चुल्लवग्ग०५।१।४] भिक्षुओंके लिए इनका निषेध था।

स्त्रियाँ अंगुलीके अगले सिरों (नखों) को लाखके रंगसे [महावरसे]

रँगती थीं; यह रंग पैरोंपर भी लगाया जाता था। इसलिए उस समय लाखका उद्योग बहुत उन्नति पर था।[1]

इन प्रसाधनोंके अतिरिक्त उस समय सुगन्ध और पुष्पका भी शौक था।[2] फूलोंके उपवन और बगीचे होते थे। गूँथकर इससे स्रग्-माला (छोटी-बड़ी) अथवा दाम (मोटी माला) बनाते थे।

सुगन्ध और इत्र भी उस समय तैयार किये जाते थे। काशी चन्दन इनमें मुख्य द्रव्य होता था, जिससे सुगन्ध और इत्र बनते थे। चन्दनका तेल और चूर्ण काममें आते थे। स्त्रियाँ चन्दनके तेलको बाल, कक्षा तथा शरीरके दूसरे भागोंमें लगाती थीं।[3] प्रियंगुके [गुजराती नाम—घेऊँला] फूलोंसे बनी सुगन्ध उस समय बहुत प्रसिद्ध थी। सुगन्धके लिए अगरु और तगरका भी उपयोग होता था। इत्र और सुगन्धको बेचनेवाले गन्धि थे, उस समय यह एक श्रेष्ठ व्यापार समझा जाता था [पण्यानां गान्धिकं पण्यं किमन्यैः कांचनादिभिः। यत्रैकेन च यत्क्रीतं तच्छतेन प्रदीयते॥

---

१. कण्ठशल्यका उदाहरण देते समय सुश्रुत और संग्रहमें लाखका उदाहरण दिया है। लाखका उद्योग उस समय घरेलू धंधा था, इसलिए इसके निगलनेकी बहुत सम्भावना थी। यथा—

जातुषे तु कण्ठासक्ते कण्ठे नाड़ीं प्रवेशयेत्तया चाग्नितप्तां सूक्ष्ममुखीं शलाकाम्। अथ तां गृहीतशल्यां शीताभिरद्भिः परिषिच्य स्थिरीभूतमाहरेत्। —संग्रह० सूत्र० अ० ३७।२०

२. पुष्पोंसे प्रसाधन—

केशान्नितान्तघननीलविकुञ्चिताग्रानापूरयन्ति वनिता नवमालतीभिः।
कर्णेषु च प्रवरकांचनकुण्डलेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति॥
हारैः सचन्दनरसैः स्तनमण्डलानि श्रोणितटं सुविपुलं रसनाकलापैः।
—ऋतुसंहार ३।१९।२०

पंचतंत्र १।१३]। गन्धि अपने काममें इतने चतुर होते थे कि नानाप्रकार की सुगन्ध तैयार करते थे।[1]

बाल काटनेके लिए उस्तरा, कैंची, मोचना आदिका व्यवहार होता था, कानको साफ करनेके लिए कानखोदनी का उपयोग होता था। उस्तरेको तेज करने तथा इसको मोर्चेसे बचानेके लिए विशेष सावधानी बरती जाती थी, इसको तेज करने के लिए शिला होती थी तथा मोर्चेसे बचानेके लिए इनको सत्तू अथवा चूर्ण भरी नलिकामें रखते थे; कभी पाषाण-चूर्ण या मोममें लपेटकर भी रखते थे, सरितककी [गोंदकी] सिपाटिक अनुमति इनको सुरक्षित रखनेके लिए दी गई थी [चुल्लवग्ग० ५।१।१२, ५।३।५–६–७]।

कान खोदनियोंके नमूने

बाल काटनेके सम्बन्धमें भगवान् बुद्धने भिक्षुओंको उपदेश देते समय कहा है—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, छुरे की; छुरेकी सिल; छुरेकी सिपाटिका [चमोटी] नमतक [नहन्नी] सभी छुरेके सामान वस्तुओंकी। उस समय षडवर्गीय भिक्षु मूँछ छँटवाते अथवा बढ़ाते थे। गोलोमिका [बकरे जैसी], चौकोर [चतुरस्रक] अथवा अन्य प्रकारसे दाढ़ी [दाठिका]

---

१. पृथक् पृथक् गुण होनेपर भी समवाय होनेपर नया गुण उत्पन्न होता है, इसका उदाहरण—

पृथक् पृथक् प्रसिद्धेऽपि गन्धे गन्धान्तरे यथा।
गन्धाङ्गानां मनोह्लादि प्रत्यक्षं सामवायिकम् ॥

—काश्यपसंहिता० खिल ३

रखते थे, परिमुख [छातीका बाल कटवाना] कराते थे, अड्डुरक [पेटके बालोंका रोमपंक्तिमें छोड़ना] कराते थे, गुह्य स्थानोंके रोम कटवाते थे। लोग हैरान होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।

भिक्षुओ! मूँछ नहीं कटवानी चाहिए, मूँछ नहीं बढ़ानी चाहिए, गोलोभिका, चतुरस्रक, परिमुख, अड्डुरक, नहीं कटवाना चाहिए, दाढ़ी नहीं रखनी चाहिए, गुह्यस्थानके रोमको नहीं कटवाना चाहिए, जो कटवाये उसे दुक्कटका दोष हो।

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कर्त्तरिका [कैंचीसे] से बाल कटवाते थे, जैसे कामभोगी गृहस्थ—

भिक्षुओ! कैंचीसे बाल नहीं कटवाने चाहिए। —चुल्लवग्ग ५।२।६

बालोंको सँवारना स्त्री और पुरुष दोनों ही सौन्दर्यकी दृष्टिसे करते थे। अत्रिपुत्रने कहा है कि मनुष्यको बाल सँवार कर रहना चाहिए [**प्रसाधित-केशः—चरक० सू० अ० ८**]। भिक्षुक अपने बालोंको दो माससे अधिक लम्बे नहीं रखते थे। केशोंकी लम्बाई दो अंगुलसे अधिक नहीं होने देते थे। केशोंको सँवारनेके लिए कोच्छ [थकरी], फण, [कंघी], हाथ की कंघी, खली अथवा पानी मिला तेल काममें लाते थे [चुल्लवग्ग ५।१।३]।

शिरके बाल, कपोल अथवा मुखपर किए पत्रभंग या चित्रकर्मके लिए दर्पणकी ज़रूरत थी। समृद्ध पुरुष या राजा लोग स्वर्णका बना उत्तम पॉलिसका दर्पण काममें लाते थे। कभी-कभी दर्पणमें हाथीदाँतका हत्था लगा रहता था।

हाथकी अंगुलीके नख भी बढ़ाये जाते थे [यथा कादम्बरीमें—**"स्वहस्तकमल कनिष्ठिका नखशिखरेणाभिलिख्य"—महाश्वेता दशा वर्णन**]। भगवान् बुद्धने नखोंको लम्बा रखनेका निषेध किया, और उनको मुखसे काटनेका, नखोंसे काटनेका या दिवारसे घिसनेका भी निषेध किया है। नखोंको नहन्नीसे कटवाना चाहिए, ये नख मांसके बराबर कटवाने चाहिएँ [चुल्लवग्ग० ७।३।५]। नखोंपर पॉलिस या रंग लगानेका उस समय

सामान्य चलन था; जिसे भिक्षुओंके लिए भगवान् बुद्धको बन्द करना पड़ा। [1]अत्रिपुत्रने नखोंकी प्रशंसामें उनको गोल, स्निग्ध, ताम्रवर्ण, उभारयुक्त, कछुएके आकारका होना प्रशस्त बताया है [चरक० शा० अ० ८।९५]।

कानसे मैल निकालनेके लिए कानखोदनीका उपयोग होता था। ये कानखोदनी [कर्णमल हरणियाँ] भिक्षुओंके लिए हड्डी, दाँत, सींग, नरकट, बाँस, काठ, लाख, फल, ताँबे और शंखकी बनाई जाती थीं। गृहस्थ लोग स्वर्ण और चाँदीकी बनी कानखोदनी काममें लाते थे। [चुल्लवग्ग० ५।२।७]।[2]

---

१. वात्स्यायन कामसूत्रमें 'नखक्षत' रागवृद्धिमें एक साधन बताया है [रागवृद्धौ संघर्षात्मकं नखविलेखनम्]। इसीलिए नखको बढ़ाकर रखते थे, आगेसे दन्तुर बनाया जाता था; जिससे देखनेमें सुन्दर दीखते थे, गोल रखते थे, इनपर पौलिश और रंग लगाते थे। छान्दोग्योपनिषद्में नहरनीके लिये 'नखकृन्तन' शब्द आया है [यथा सौम्येकेन नखकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातं स्यात्—६।१।४६]।

२. चरकमें भी इन्हीं वस्तुओंसे धूमवर्त्ति, नेत्रवर्त्ति बनानेका उल्लेख है, यथा—

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीति कांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैः।
नलैः विषाणैः मणिभिश्च तैस्तैः नेत्राणि कार्याणि सुकर्णिकानि ॥

—चरक० सि० अ० ३।७

मौर्य काल

मौर्य कालीन राजदरबारका वैभव कौटिल्य अर्थशास्त्रसे स्पष्ट होता है। राज्यदरबार स्त्री और पुरुष दोनोंसे भरा रहता था, राज्यका कोष बहुत कीमती तथा अलभ्य वस्तुओंसे पूर्ण था। सुगन्धित द्रव्य, चन्दन, अगरु, गुग्गुल, बोल आदि अनम, दक्षिण भारत तथा समुद्र पारसे आते थे। राजाके प्रसाधन द्रव्योंके विषयमें बहुत सावधानी बरती जाती थी यथा—

"कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताः समग्रमुपकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः। स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्या कुर्युः। ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः। आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः। स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षो बाहुषु च। एतेन परस्मादागतकं च व्याख्यातम्॥ कौटिल्य० १।२१।२७-३२।

हजामत बनानेवाले नाई या शृंगार करनेवाले पुरुष प्रथम स्वयं स्नान करके शुद्धवस्त्र धारण करके; मोहरसे चिह्नित उस्तरे आदि प्रसाधनके साधनोंको महलोंके भीतर रहनेवाले सेवकोंके हाथोंसे लेकर राजाकी सेवामें उपस्थित हों। स्नान कराने, पैर दबाने, बिस्तर बिछाने, कपड़े धोने तथा माला बनानेका काम महलमें रहनेवाली दासी ही करें [कादम्बरीमें राजा शूद्रक तथा चन्द्रापीड़के साथ बराबर उनकी ताम्बूलवाहिनी रहती है; यही प्रसाधनकी देख-रेख करती थी]। दासियोंकी देख-भालमें अन्य शिल्पी लोग इस कामको करें। दासियाँ अपनी आँखोंसे देखकर वस्त्र और माला राजाको दें। स्नानके उपयोगी उबटन, चन्दन, सुगन्धित द्रव्य आदि वस्तुएँ दासियाँ पहले अपनी छाती और बाहुओंपर लगायें। बाहरसे आई

वस्तुओंकी भी इसी प्रकारसे पहिले परीक्षा करके फिर राजाको दें।[1]

मौर्यकालमें प्रसाधन द्रव्योंमें–विशेषतः सुगन्धित द्रव्योंका उपयोग बहुत होता था। राजाके शयन-कक्षमें, रहने-बैठनेके स्थानमें धूम होता था। इसके लिए अगर और चन्दन विशेषतः जलाया जाता था। चन्दन बहुत महँगा और दुर्लभ था, इसे बहुत सुरक्षापूर्वक रखा जाता था। इसको मँगानेमें बहुत अधिक व्यय होता था। सुगन्धित द्रव्योंके नाम प्रायः उसी देशके नामपर होते थे जिस देशमें ये उत्पन्न होते थे [पाणिनिका सूत्र है—तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि—४।२।६७] के अनुसार। जो वस्तु जिस देशमें होती है उस वस्तुसे उस देशका नाम पड़ता था। इसका उल्टा भी होता है, जो वस्तु जिस देशसे आती थी, वह वस्तु उस देशके नामसे कही जाती थी, जैसे–कापिशायिनी द्राक्षा–कपिशासे आई द्राक्षा; सनाय-रूमी, रूमसे आई सनाय; जापानसे आया माल जापानी [देखिये—पाणिनिकालीन भारतवर्ष—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल]।

अर्थशास्त्रमें चन्दनके निम्नलिखित भेद दिये हैं[2]—

१. सातन—यह लाल रंगका होता है, इसमें मिट्टीकी गन्ध आती है, मिट्टीके सूखे ढेलेपर पानी डालनेपर जो सोंधी गन्ध आती है, उसी गन्धका होता है।

२. गोशीर्षक—इसका रंग काला-ताम्रवर्ण—इसमें मछलीकी गन्ध आती है [दिव्यावदानमें इसका उल्लेख आता है;] यह जहाजके द्वारा सोपरासे आता था।

---

१. ईश्वराणां वसुमतां विशेषेण तु भूभुजां प्रायेण मित्रेभ्योऽप्यमित्रो भूयांसो भवन्ति।

माल्यस्य म्लानता गन्धनाशः स्फुटिताग्रत्वम्।

अभ्यंगप्रयुक्ते त्वग्दाहस्वेदपाकस्फोटावदरणानि। तत्र शीताम्बुपरिषिक्तस्य चन्दनतगरोशीरकुष्ठवेणुपत्रिकाऽमृतासोमवल्लीश्वेतापद्मकालेयकैरनुलेपम्।......संग्रह० सू० अ० ८।

२. कौटिल्य अर्थशास्त्र—२।११।६०

३. हरिचन्दन—इसका रंग तोतेके परके समान होता है, इसमें विशेष गन्ध आती है।

४. तार्णास—इसका रंग भी हरिचन्दनके समान होता है।

५. ग्रामेरुक—लाल या गहरा लाल, इसमें बकरेके मूत्रकी गन्ध आती है।

६. दैवसभेय—लाल, इसमें कमलकी गन्ध आती है [राजशेखरके अनुसार देवसभा मध्यभारत और दक्षिण भारतके सन्धिस्थलपर स्थित है, श्रीजयचन्द्र विद्यालंकार-भारतभूमि और उसके निवासी पुस्तकमें इसे देव-सभा या दिवासभा मानते हैं; इसकी पहचान वर्त्तमान दिवास स्टेटसे करते हैं]।

७. जावक—ऊपरके समान होता है [मध्यभारतमें जावक नामक राज्य है, जो कि इन्दौरके पास छोटी स्टेट है]।

८. जोंगक—लाल या लाल काला—चिकना मसृण होता है [तेल होनेसे स्निग्ध होता है—इसे अगरुका भेद मानते हैं। यह चीन या जावा अथवा दक्षिणी सुमात्रामें कोई स्थान था]।

९. तौरूप—जोंगकके समान [सम्भवतः ताम्रलिति है—जिसे आज-कल तामलुक कहते हैं]।

१०. मालेयक—लाल-श्वेत वर्णका [एनामलाई और अन्नामलाई-पर्वतमें उत्पन्न चन्दन]।

११. कुचन्दन—काले रंगका; इसमें गोमूत्रके समान गन्ध आती है।

१२. कालपर्वतक—देशका चन्दन रूक्ष, अगरुके समान काला, लाल या गहरा लाल होता है।

१३. कोशाकारपर्वतक—काला या चितकबरा काला होता है।

१४. शीतोदकीय—काला और चिकना तथा कमलके समान गन्ध-वाला [शीतोद नदीका ठीक परिचय कथा सरित्सागर '१८'४;२३३;२३४' में है]।

१५. नाग पर्वतक—रूक्ष एवं शैवाल—सरवालके रंगका होता है [अजमेर और पुष्करके बीचमें स्थित पहाड़को नाग पहाड़ कहते हैं, जयचन्द्र; परन्तु यहाँ चन्दन कभी उत्पन्न हुआ यह सन्देह है; इससे आसामको लेना अधिक उचित है, नागा लोग आज भी वहाँ हैं।

१६. शाकल—कपिल वर्ण-पीला-भूरा सा होता है; [सम्भवतः वर्त्त-मान स्यालकोटसे आता हो]।

चन्दनके गुण—चन्दन हल्का, स्निग्ध [तेल होनेसे] जल्दी न सूखनेवाला; तेलीयचमकका; घीके समान चिकास-मसृणता लिए, आह्लादक सुगन्धयुक्त, त्वचामें विलीन होनेवाला, त्वचापर जमनेवाला, मीठी भीनी गन्ध युक्त; गरमीको सहनेवाला, उष्णिमाको लेनेवाला, त्वचाके लिए आरामदेह होना चाहिए।[1]

मौर्य साम्राज्यमें अगरु चन्दन भी पर्याप्त एकत्रित किया जाता था। जिससे सुगन्ध बनती थी।

१. जोंगक—अगरु, काला, चितकबरा, इस पर गोल-गोल विन्दियाँ होती हैं या भिन्न भिन्न रंगकी विन्दियाँ होती हैं [यह कामरूप-आसाम या सुमात्रासे आता था]।

---

१. [क] चन्दनके दो मुख्य भेद हैं, श्वेतचन्दन या चन्दन, काला चन्दन या अगरु; [जैसा कालिदासने गंगा यमुनाके संगमका वर्णन करते हुए कहा है–"अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव—रघु० १३।५५]।

[ख] सर्वरत्नमयः श्रीमानृषभो नाम पर्वतः।
गोशीर्षकं पद्मकं च हरि श्यामं च चन्दनम्॥
दिव्यमुत्पद्यते यत्र तच्चैवाग्निसमप्रभम्।
न तु तच्चन्दनं दृष्ट्वा स्पृष्टव्यं च कदाचन॥

—वा० रा० ४।४१।४२

२. दोंगक—रंगमें काला होता था, [यह आसाम या जिला पेगू-ब्रह्मासे आता था] ।

३. पारसमुद्रक—विचित्र सुगन्धवाला, खश जैसी महक लिए अथवा चमेलीकी ताजी गन्धके समान गन्धवाला होता है [यह इण्डोचायना, सुमात्रा, जावासे सम्भवतः आता था] ।

अगुरुके गुण—वजनमें भारी, स्निग्ध, दूरसे ही मनोहर गन्ध देनेवाला; धीमे धीमे जलनेवाला होता है। जलनेपर निरन्तर धूम देता है, गन्ध एक समान होती है, त्वचा पर बैठनेवाला होता है, सूखकर या लगानेपर नीचे नहीं गिरता ।

सुगन्धित द्रव्य

१. तैलपर्णिकि नामक सुगन्धित द्रव्य अशोक ग्राममें उत्पन्न होता था, इसका रङ्ग मांसके समान और गन्ध कमलके समान होती थी ।

२. जोंगक—लाल या पीले रंगका, श्वेत कमल या गोमूत्रके समान गन्ध होती है ।

३. ग्रामेरुक—चिकना, गोमूत्रके समान गन्ध ।

४. सौवर्ण कुड्यक—लाल, पीले रंगका; बिजौरेके समान गन्ध वाला [सौवर्णकुड्यकका शब्दार्थ सुवर्ण भित्ति है, सुवर्णभित्तिसे स्वर्ण भूमि लेकर पेगु, बसीन और मर्त्तवान [ब्रह्मा] के ये तीन जिले इस शब्दसे अभिप्रेत हैं । डा० मोतीचन्द्र] ।

५. पूर्णक—लाल कमलके समान सुगन्ध या मक्खनके समान गन्ध का होता है ।

६. भद्रश्रीय—यह आसाम प्रान्तमें लौहित्य नदीके पारसे आता था; इसका रंग मालती—जूहीके समान श्वेत होता था ।

७. आन्तरवत्य—अन्तरवती नदीके किनारे उत्पन्न चन्दनमें खसकी गन्ध आती है, दोनों प्रकारके [भद्रश्रीय और आन्तरवत्य] चन्दन कुष्टके समान वाले होते हैं ।

८.—कालेयक—स्वर्णभूमि ब्रह्मामें उत्पन्न होता है, यह चिकना और पीले रंगका होता है।

६. औत्तर पर्वतक—उत्तर पर्वत [हिमालय प्रदेश] में उत्पन्न होने वाला चन्दन लाल, पीला होता है, पीसनेसे, उबालनेसे, जलानेपर इसके गन्धमें कोई अन्तर नहीं आता। इसका रंग भी नहीं बदलता, जिस द्रव्यके साथ मिलाया जाये उसे भी सुगन्धित कर देता है।

इन सुगन्धित द्रव्योंका गुण अपनी महक बनाये रखना है। इन सुगन्धित द्रव्योंके गुण चन्दन और अगुरुके समान हैं।

आयुर्वेदमें चन्दनके मुख्य भेद निम्न हैं

१. चन्दन, गन्धसार, महार्ह, श्वेतचन्दन, भद्रश्री, मलयज, गोशीर्ष, तिलपर्णकम् ये चन्दनके पर्याय हैं। राजनिघण्टुकारने बारह प्रकारका चन्दन बताया है। यथा १. श्रीखण्ड, २. महार्ह, ३. गोशीर्ष, ४. तिलपर्ण, ५ मंगल्य-मलयाचलमें उत्पन्न, ६. गन्धराज, ७. सर्पावास, ८. गन्धाढ्य, ६. भद्रश्री, १०. बावन, ११. शीतगन्ध, १२. अङ्कभूह्वय।

यह चन्दन आर्द्र और स्वयं सूखा होनेके कारण दो प्रकारका है। आर्द्र चन्दनको वेट्ट कहते हैं। इस भागमें उत्पन्न चन्दन बेट्ट कहलाता है। अपने आप सूखा चन्दन सुक्कड़ि कहलाता है।

२. रक्तचन्दन—इसको हरिचन्दन भी कहते हैं। [आयुर्वेदमें अन्तः प्रयोगमें रक्तचन्दनका उपयोग विधेय है और वाह्य प्रयोगमें श्वेत चन्दन बरता जाता है।]

३. कुचन्दनको पतंग, रक्तकाष्ठ कहते हैं।

४. कालीयकके पर्याय पीतकाष्ठ, मलयज, हरिचन्दन हैं।

५. बर्बरिक—श्वेतरंगका और निर्गन्ध होता है। राजनिघण्टुमें इसे सुगन्धित कहा है।

६. हरिचन्दन।

सामान्यगुण—ये सब चन्दन रस और वीर्यमें समान गुण वाले हैं, गन्धकी विशेषताके कारण ही इनमें भिन्नता रहती है। इनमें प्रथम कहे चन्दन श्रेष्ठ हैं।[1]

अगुरु—भी सुगन्धवाला होनेसे चन्दनकी श्रेणीमें आता है, परन्तु इसका लेप गरम होता है; इसका उपयोग धूमके लिए प्रायः होता है [सुधूम्यो गन्धधूमजः—राजनिघण्टु]।

१. अगुरुके पर्याय लोह; कृष्णागुरु, अनार्यक हैं [इस नामसे सन्देह होता है कि यह बाहरसे आया है या दक्षिण देश–अनार्य संस्कृतिवाले देशसे आनेवाली वस्तु है]।

२. कालेयकके नाम पीतवर्ण–शृङ्गारके योग्य, कालागुरु, केश्य, धूपार्ह, वल्लर, वसुक, कृष्णकाष्ठ आदि हैं। इसके भी बारह भेद राज-निघण्टुमें कहे हैं।

३. काष्ठगुरु।

४. दाहगुरुके पर्याय धूपागुरु, तैलागुरु हैं; इसमें तैल अधिक रहता है।

५. मंगल्या।

अगुरुके ये पाँच भेद हैं।[2]

---

१. धन्वन्तरिनिघण्टुसे।

२. चरकमें चन्दनादि तैलमें—"चन्दन भद्रश्रीकालानुसार्य कालीयक इन सबको साथमें पढ़ा है।

—चरक० चि० अ० ३।२५८.

चन्दनं दुर्गन्धहर दाह निर्वापणलेपनानां;
लामज्जकोशीर दाहत्वग्दोष स्वेदापनयनप्रलेपनानां;
रास्नागुरुणी शीतापनयनप्रलेपनानां [श्रेष्ठम्]

—चरक० सू० अ० २५।४०.

आयुर्वेदमें चन्दनादि वर्ग सुगन्धित द्रव्योंका समूह है। इनमें चन्दन और अगुरु इन दोनोंसे अत्रिपुत्रने भिन्न-भिन्न तैल सिद्ध करके शीत और उष्ण दोनों प्रकारके ज्वरोंमें उपयोग करनेको कहा है; इनका उपयोग गन्ध तथा स्पर्श-सुखके लिए होता है—

चन्दनादिरयं वर्गस्तृतीयः परिकीर्त्तितः।
श्रीमतां भोगिनामर्हः प्रायो गन्धगुणाश्रयः॥
प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्टहरं परम्।
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा॥
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः।
सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम्॥
वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्डोऽपि पुरुषायते।
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम्।

—धन्वन्तरि निघण्टु

धन्वन्तरि निघण्टुमें यह चन्दनादि वर्ग तीसरा है। श्रीमन्त और ऐश्वर्यशालियोंके लिए सेवन करने योग्य है, प्रायः सुगन्ध वाले द्रव्य ही इसमें हैं। स्वेद, मैल, दुर्गन्ध, कण्डू और कुष्टको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है। इस वर्गकी औषधियोंसे शरीरका अभ्यंग करके सत्तर वर्षका वृद्ध भी अपने को युवा मानने लगता है। उसमें शुक्रकी वृद्धि होती है, स्त्रियोंका प्रिय हो जाता है, सौभाग्य बढ़ता है, दर्शनीय होता है। वन्ध्या स्त्री भी इसके अभ्यंगसे गर्भको धारण करती है, नपुंसकमें भी पुरुषत्व आता है, निःसन्तान के सन्तान होती है और दीर्घायु प्राप्त करता है।

रामायणमें एक ऐसे चन्दनका उल्लेख है, जिसकी लाली सूअरके रक्तके समान थी, उसको उत्तम चन्दन कहा है—

"वराहरुधिराभेण शुचिना च सुगन्धिना।
अनुलिप्तं परार्ध्येन चन्दनेन परं तपम्॥

—वा० रा० २।१६।९.

शुंग और शातवाहन काल

मौर्यवंशके पीछे शुंग वंश तथा शातवाहन युग आता है; इस समय भी मौर्यकुलका विलास वैभव सुरक्षित रहा। इसकी साक्षी साँची और भरुहतकी चित्रकला है। पत्थरोंमें उत्कीर्ण नर्त्तकियाँ, गायक-गायिकाएँ अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ उस समयकी स्थितिका बोध कराती हैं। इनकी केश रचना, आभूषणोंका पहिनना, कमरबन्ध, करधनी, आदि वस्तुएँ उस समयके विलासका स्पष्ट चित्र सामने उपस्थित कर देती हैं।

विलासमय जीवनके लिए शिक्षित बना मन आवश्यक है। इसीलिए-शृङ्गार-प्रसाधन आदिका भी शिक्षामें विशेष स्थान था। इसमें प्रसाधन करना ही मुख्य काम नहीं था, अपितु प्रसाधन द्रव्योंको पीसकर उनसे भिन्न भिन्न लेप बनाना भी सीखना जरूरी था[1]। प्रसाधन करनेवाली स्त्रियोंके लिए महाभारतमें सैरन्ध्री शब्द आया है। कवि बाणने इसके लिए ताम्बूल करङ्कवाहिनी शब्दका प्रयोग किया है। यह काम प्रायः स्त्रियाँ करती थीं, स्त्रियाँ ही स्त्री और पुरुष दोनोंका प्रसाधन करती थी।[2]

---

१. जैसा कि अर्जुनने वृहन्नलाके रूपमें अपना परिचय देते समय कहा है—

''वेणीं प्रकुर्यां रुचिरे च कुण्डले तथास्रजः प्रावरणानि संहरे।
स्नानं चरेयं विमृजे च दर्पणं विशेषकेष्वेव च कौशलं मम्॥
क्लीवेषु बालेषु जनेषु नर्त्तने शिक्षाप्रदानेषु च योग्यता मम।
करोमि वेणीषु च पुष्पपूरणं न मे स्त्रियः कर्मणि कौशलाधिकाः॥

—महा० विराट् ११।८६.

२. [क] अवतीर्णस्य च जलद्रोणीं वारविलासिनीकरमृदित सुगन्धामलकलिप्तशिरसोराज्ञः समन्तात् समुपतस्थुरंशुकनिविड निबद्धस्तनपरिकराः, दूरमुत्सारित वलय बाहुलता......

विलासमय प्रसाधनमें सुगन्धित तेल, सुगन्ध, चूर्ण, सुगन्धवाली गोंद, चन्दन आदि वस्तुओंकी जरूरत होती है। महाभारतमें प्रसाधन द्रव्योंके पाँच भेद किये हैं, यथा—

१. चूर्ण या लेप—यह सुगन्धित पत्ते या फूलोंको पीसकर बनाये जाते थे, [यथा आजकल मेंहदीको पीसकर लेप बनाया जाता है]।

२. प्रलेप—इसमें वस्तुको पत्थर, पानी या दूधमें घिसकर बारीक प्रलेप बनाया जाता है [यथा—चन्दनको पत्थरपर घिसकर स्नानके पीछे शरीर पर चुपड़ा जाता है]। इस प्रकार बनानेमें प्रलेप बहुत बारीक बनता है। यह विधि कठोर लकड़ीके लिए काममें आती है।

३. कमरेको या बालोंको सुगन्धित करना—इसके लिए देवदारु, अगरु, कुष्ठ, गोलोभी आदि सुगन्धित द्रव्य बरते जाते हैं; जिनमें तेलिय अंश रहता है, इनको जलते हुए कोयलोंपर डालकर उसका धुवाँ कमरेमें, वस्त्रोंपर, बालोंपर और शरीरपर दिया जाता है।

४. शिलारस, बोल, धूप-राल—सुगन्धित गोंद वाले द्रव्य जलाकर सुगन्ध उत्पन्न की जाये; इनमें तेलीय अंश प्रायः नहीं रहता।

५. प्राणिज वस्तुएँ—यथा कस्तूरी, गोरोचना [आजकल अम्बर]; आदि सुगन्धित वस्तुओंका उपयोग।

स्त्रियाँ शरीरको सजानेके लिए भिन्न-भिन्न चित्र शरीरपर अङ्कित करती थीं। इस प्रकारके बहुतसे नमूने भरहुतकी मूर्तियोंपर मिलते हैं। इन नमूनोंको कंनिघमने गुदवानेके चिह्नोंके रूपमें माना है। जैसा कि इस प्रदेशेकी गोड़, भील, कोल, शावर जातियोंमें पाया जाता है। इस प्रदेशमें

[ख] ततस्ताः काश्चिन्मरकतकलसप्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्त्तिमत्यः पत्रपुटै...कुंकुमजलेन वाराङ्गनाः क्रमेण राजानभभिषिषिञ्चुः॥ कादम्बरी.

यह सामान्य रिवाज है; कि कोई भी स्त्री बिना गुदवाये नहीं रहती। भरहुतके पास प्रायः भील, कोल लोग रहते हैं। परन्तु वास्तविक स्थितिसे यह कल्पना बहुत दूर है। क्योंकि इन असभ्य जातियोंका जहाँ भी उल्लेख है वहाँ ये आर्य लोगोंसे हीन-असभ्य ही कहे गये हैं। इसलिए यह मानना कि गुदवानेका प्राचीन रूप भरहुतका चित्रण है ; इतना ठीक नहीं, जितना कि भरहुतके चित्रकर्मको जातक और विनयपिटकमें वर्णित वैशेषिक प्रसाधन समझना। उस समय स्त्रियाँ मुखपर जिस प्रकारका प्रसाधन कर्म करती थीं वही चित्रकर्म इन मूर्त्तियोंपर अंकित है।

भरहुतकी स्त्री मूर्तियोंपर जो चित्रकर्म किये हुए हैं, वे प्राचीनकालकी विलासपूर्ण रुचिकी एक झलक है। कपोलोंपर सूर्य चन्द्र; नाना प्रकारके फूल, पत्ते चित्रित हैं। एक स्त्री मूर्तिपर अंकुश अंकित है, वाम कपोलपर फूल चित्रित किया है। किसी पर पत्ती अथवा त्रिशूल भी अंकित है। कपोलोंपर एक तरफ चन्द्रमा और दूसरी तरफ सूर्य चित्रित किया है; इसके सिवाय आभूषण भी दिखाये हैं।[1]

केश प्रसाधनके जितने रूप हमको गुप्त कालमें मिलते हैं उतने इस समयकी मूर्तियों या खिलौनोंमें नहीं मिलते। भरहुतकी मूर्तियोंमें केशरचना निम्न प्रकार की है। बालोंको पीठपर खुला छोड़कर नीचे उगमें गाँठ दे दी गई है। स्त्री जब सिरपर पगड़ी या कोई वस्त्र बाँधती है तब बालोंको शिरके ऊपर निकालकर चोटीमें गाँठ बाँध लेती है। बालोंको पीठपर खुला छोड़ कर दो चोटियोंमें विभक्त किया गया और फिर प्रत्येकको दो भागोंमें बाँट कर परस्पर गूँथ लिया गया और फिर इन दोनोंको मिलाकर एक मोटी वेणी बनाई गई। पुरुष अपने लम्बे बालोंको पगड़ीसे नीचे बाँधकर ऊपर गाँठ देते थे।

साँचीकी मूर्तियोंमें स्त्रियोंका केश प्रसाधन भरहुंतके समान है अथवा

---

१. श्री डाक्टर मोतीचन्द्रजीका लेख।

वे बालोंको शिरपर टोपीके आकारमें चारों ओरसे लपेट लेती थी। कुछ मूर्तियोंपर ब्रह्माकी स्त्रियोंकी भाँति शिरके ऊपर गोल केश रचना मिलती है। किसी-किसी मूर्तिमें बाल खुले पीठपर दिखाये गये हैं और नीचे एक ढीली गाँठ देकर उनको बाँधा गया है। कुछ थोड़ेसे चित्रोंमें बालोंको आभूषणोंकी सहायतासे बाँधा हुआ दिखाया है। ये दोनों रूप ग्रामीण औरतोंके हैं। पुरुष प्रायः चोटी पर बालोंमें गाँठ देकर बाँधते थे और दाढ़ी साफ रखते थे। जंगली जातियोंके पुरुष दाढ़ी रखते थे और बालोंको मुकुटके समान नोक चोटीदार बाँध लेते थे। [**आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तलभारेण केशरिणमिव गजमदमलिनीकृतेन केशरकलापेनोपेतम् —कादम्बरी; शबरसेनापतिवर्णनम्**]।

बालोंको सँवारनेके लिए तेल, कंघी आदिकी जरूरत होती थी। आँखोंमें अञ्जन, सुरमा बरता जाता था। सलाई, अञ्जनदानी तथा दूसरे प्रसाधन पात्रोंकी जरूरत प्राचीनकालकी भाँति इस समय भी बनी हुई थी, उनमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आई थी।

प्रसाधनके लिए सुगन्धित वस्तुएँ कहाँ-कहाँसे आती थीं, इसका बहुत कुछ उल्लेख महाभारतमें मिलता है। राजसूय यज्ञ करनेसे पूर्व पाण्डवोंने जो दिग्विजयकी थी, उसमें भेंटमें मिली वस्तुओंकी तालिकासे पता चलता है कि सहदेवको दक्षिणसे तथा भीमसेनको आसामकी विजयमें सुगन्धित वस्तुएँ मिली थीं; यथा—

चन्दनागुरुवस्त्राणि मणिमौक्तिककम्बलम्।
काञ्चनं राजतं चैव विद्रुमं च महाधनम्॥

—महा० सभा० ३०।२८

चन्दनानि च मुख्यानि रुक्मरत्नान्यनेकशः।
वासांसि च महार्हाणि कम्बलानि बहून्यपि॥

—महा० सभा० ३१।७४.

रघुवंशमें कालिदासने भी दक्षिणमें चन्दनका उल्लेख किया है, यथा—

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ॥

—रघुवंश० ६।६४.

यदि तुम मलय पर्वतकी उन घाटियोंमें सदा विहार करना चाहती हो, जिनमें पानकी बेलोंसे ढँपे सुपारीके पेड़ खड़े हैं, इलायचीके बेलोंसे लिपटे चन्दनके पेड़ लगे हैं, स्थान-स्थानपर ताड़के पत्ते फैले हुए हैं, तो तुम इससे विवाह कर लो।

रघुकी दक्षिण विजयका उल्लेख करते हुए कालिदासने लिखा है कि—

भोगिवेष्टनमार्गेषु चन्दनानां समर्पितम् ।
नास्त्रसत् करिणां ग्रैवं त्रिपदीच्छेदिनामपि ॥

—रघु० ४।४८.

साँपोंके लिपटे रहनेसे वहाँके चन्दनके पेड़ोंमें चारों ओर गहरी रेखाएँ बन गई थीं, जिनमें बँधे हुए रस्सोंको वे हाथी भी नहीं तोड़ सके, जो पैरोंके रस्सोंको झटकेसे तोड़ डालते थे।

युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञमें मिली वस्तुओंका उल्लेख करते हुए दुर्योधनने कहा—

चन्दनागुरुकाष्ठानां भारान् कालीयकस्य च ।
चर्मरत्नसुवर्णानां गन्धानां चैव राशयः ॥
कैरातकीनामयुतं दासीनां च विशाम्पते ।
निचितं पर्वतेभ्यश्च हिरण्यं भूरि वर्चसम् ॥

—महा० सभा० ५२।१०।११.

चन्दन, अगुरुकाष्ठ, कालीयकके कई भार [एक भार = ८००० तोला, २$\frac{1}{2}$ मनके लगभग]; चर्म, रत्न, सुवर्ण, सुगन्धकी राशियाँ, हजारों किरात दासियाँ और पहाड़से स्वर्ण आया है।

चन्दन और सुगन्धका मुख्य स्थान दक्षिण और पूर्व था, वहाँसे यह सब सामान उत्तरमें पहुँचता था, कुछ तो भेंट रूपमें और कुछ व्यापार के द्वारा।

सुगन्धित वस्तुएँ-मौर्य साम्राज्यसे तथा उससे भी पूर्व मुख्यतः आसाम से आती थी। इसके पीछे दक्षिण जीता गया; और इससे सम्पर्क बढ़ा तब सुगन्ध द्रव्य दक्षिणसे भी आने लगे। कोल और पाण्ड्य देशोंके राजाओंने चन्दन और अगरुको मूल्यवान् पात्रोंके साथ सहदेवको दिया था।

अगरु दक्षिणमें उत्पन्न नहीं होता, यह आज भी आसाम, ब्रह्मा और सुमात्रासे आता है। यह सम्भव है कि दक्षिणके राजाओंने बाहरसे आये हुए अगरुको, अपनी वस्तुओंके साथमें उपहारमें दिया हो।

कुशाणकाल

पहली शतीसे लेकर गुप्तकालके प्रारम्भ तक नई शक्तिने भारतपर शासन किया। कुशाण लोग उत्तर-पश्चिम चीनसे भारतमें आये थे। ईसासे १६५ वर्ष पूर्व इन्होंने शक देशको जीता और लगभग दस वर्ष पूर्व वैक्ट्रियाको अपने अधिकारमें किया था। इनका सम्बन्ध युह्‌ची जातिसे था। कुशाणोंमें सबसे अधिक शक्तिशाली और प्रसिद्ध राजा कनिष्क हुआ, जिसने पुरुषपर [पेशावर] को अपनी राजधानी बनाया था। संस्कृतका प्रसिद्ध कवि अश्वघोष और प्रसिद्ध वैद्य चरक इसीके राज्य दरबारमें थे[1]। कनिष्क बौद्ध था। इसलिए इसने बुद्ध धर्मके प्रचारके लिए प्रचारक तिब्बत, मङ्गोलिया और खोतान भेजे थे।

कुशाण शासन उत्तर भारत तक ही सीमित रहा। दक्षिणमें शातवाहन की सत्ता जमी रही। एक सौ दसवीं सदीमें चष्टन उज्जैनका शासक था, जो कुशाण वंशसे सम्बन्धित था। बादमें सातवाहनने उज्जैनको जीत लिया था। चष्टनका पौत्र रुद्रदामन एक प्रतापी शासक था। जैसा कि जूनागढ़के शिलालेखसे स्पष्ट होता है, जिसमें इसकी प्रशस्ति उत्कीर्ण है। इस का समय लगभग १५० ई० का है, जब कि इसने गौतमीपुत्र शातकर्णीको हराकर उससे पुनः सिन्ध, मारवाड़, कच्छ, सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरीय महाराष्ट्रको अपने कब्जेमें किया था। रुद्रदामनने अपनी कन्याका विवाह शातवाहनसे किया था। इसने अपनेको महाक्षत्रप कहा, जबकि इसके पूर्वके राजा अपनेको क्षत्रप कहते थे।

रुद्रदामनके पीछे क्षत्रपोंके राज्यमें कमजोरी आई। जिससे शातवाहन वंशी राजाओंने पीछेसे अपने खोये हुए कुछ प्रान्त पुनः प्राप्त कर लिये।

---

१. देखिए—अत्रिदेव विद्यालङ्कारका 'आयुर्वेदका बृहत् इतिहास'

परन्तु दूसरी शतीके अन्त तक शातवाहन राजाओंका राज्य बिखर गया। इनमें आभीरोंने दक्षिण-पूर्व गुजरातमें अपना साम्राज्य बनाया। इन्हीं आभीरोंने ३४० ईस्वीमें क्षत्रपोंके बड़े भारी राज्यको जीत लिया।

ईसा संवत्के प्रारम्भ होनेके दिनोंमें दक्षिणमें तीन राज्य—केर, कोल और पाण्ड्य थे।

प्रथम शतीसे लेकर लगभग ३५० ईसवी तकका इतिहास स्पष्ट नहीं। यह भारतीय इतिहासका अंधकारमय समय है [देखिए काशीप्रसाद जायसवाल लिखित 'अन्धकार युगीन भारत' पुस्तक]।

इस समय जो प्रसाधन मिलते हैं वे तत्कालीन मूर्तियोंपर उत्कीर्ण हैं। कुषाण कालकी मूर्त्तियाँ सुन्दर चिकने पत्थर पर खुदी हैं। इनमेंसे बहुत सी मूर्त्तियाँ मथुराके आस पास मिली हैं। इन मूर्त्तियोंमें शालभञ्जिका, अशोक वृक्षको पाँवसे छुती हुई, खिली हुई टहनीसे हाथ फैलाकर फूलोंको चुननेका दृश्य, अपने शृंगारमें लगी स्त्रीकी मूर्त्ति, अपने लम्बे बालोंमें से पानीको निचोड़ती अथवा हाथमें दर्पण लेकर शृंगार करती हुई स्त्रीमूर्त्ति, पर्वतके प्रपातके नीचे स्नान करती हुई स्त्री मूर्त्ति आदि इस कलाके सौन्दर्य हैं। इस कलामें मूल तत्त्व भारतीय है, परन्तु कला यूनानी है। स्त्री और पुरुषके शरीरके गठन, उसकी भाव भंगियाँ बहुत बारीकीसे अंकित की गई हैं। मांस पेशियोंका गठन स्पष्ट दिखाया है, मूर्त्तियोंको कपड़े मोटे पहिनाये हैं, उनकी सलवटें बहुत ही बारीकीसे दिखायी हैं। मूर्त्तियोंके अंग-प्रत्यंगोंको दिखानेके लिए उनको सटे हुए झीने या अर्धपारदर्शक वस्त्रोंसे भी अङ्कित किया है। इस कलामें कलाकार आत्मा और हृदयसे भारतीय रहा परन्तु कलाका शरीर यूनानी बना।

इस कलाके कुछ दृश्योंका वर्णन बुद्धचरित तथा कामसूत्र वात्स्यायनमें मिलता है, यथा—

> चूतशाखां कुसुमितां प्रगृह्यान्या ललम्बिरे।
> सुवर्णकलशप्रख्यान्दर्शयन्त्यः पयोधरान्॥ —बुद्धचरित ४।३५

अथ लोलेक्षणा काचित् जिघ्रन्ती नीलमुत्पलम् ।
किञ्चिन्मदकलैः वाक्यैः नृपात्मजमभाषत ।।

—बुद्धचरित ४।४३.

कोई स्त्री आमकी विकसित शाखाको पकड़कर उससे लटककर सुवर्ण कलशके समान अपने स्तनोंको दिखाती थी। दूसरे कोई स्त्री नीले कमलको सूँघते हुए मदसे भरे सुन्दर वाक्य राजकुमारसे कहने लगी।

कामसूत्रमें आलिंगनके जो भेद बताये हैं, वे वृक्ष और लता संयोगके प्रतिनिधि हैं[1], इनके चित्र अंकित किये गये। यथा—

लतावेष्टितकं–वृक्षाधिरूढकम्... —कामसूत्र-२।१५

प्रसाधन सामग्रीको तैय्यार करनेमें स्त्रियोंसे काम लिया जाता था। स्त्रियाँ ही प्रसाधन कार्य करती थीं, यथा सौन्दरानन्दमें—

काचित्पिपेषाङ्गविलेपनं हि वासोऽङ्गना काचिदवासयच्च ।
अयोजयत्स्नानविधिं तथाऽन्या जग्रन्थुरन्या सुरभीः स्रजश्च ॥

—सौन्दरा, ४।२६.

कोई स्त्री विलेपन पीस रही थी, कोई स्त्री वस्त्रोंपर सुगन्ध लगा रही थी। कोई स्त्री स्नानकी तैयारी कर रही थी और कोई सुगन्धित माला गूँथ रही थी।

---

१. शिशुपाल वधमें इनका उल्लेख हुआ है—

विलसितमनुकुर्वती पुरस्तादधरणिरुहाधिरुढो वधूर्लतायाः ।
रमणमृजुतया पुरः सखीनामाकलितचापलदोषमालिलिङ्ग ॥

—माघ०

ससलिलमवलम्ब्य पाणिनांसे सहचरमुच्छ्रितगुच्छवाञ्छयान्या ।
सकलकलभकुम्भविभ्रमाभ्यामुरसि रसादवतस्तरे स्तनाभ्याम् ॥

—माघ०

इस समय दक्षिणाका विलासमय जीवन उत्तरके समान ही था, वहाँ पर भी सुगन्धित माला, उत्तम सुगन्ध, चन्दन और अगरुके लेप, सुगन्धित चूर्ण और महीन वस्त्रों आदिका शौक एवं रिवाज़ था; जैसा कि अमरावती और नागार्जुन कोंडामें मिलनेवाली मूर्त्तियोंसे स्पष्ट होता है।

यह केवल विलासमय जीवनके लिए ही नहीं था, अपितु स्वास्थ्यके लिए भी आवश्यक था, इसीसे स्वास्थ्य विधिमें चरक एवं सुश्रुतमें इनका उल्लेख स्वास्थ्य दृष्टिसे ही किया है, यथा—

> काम्यं यशस्यमायुष्यमलक्ष्मीघ्नं प्रहर्षणम्।
> श्रीमत्पारिषदं शस्तं निर्मलाम्बरधारणम्॥
> वृष्यं सौगन्धमायुष्यं काम्यं पुष्टिबलप्रदम्।
> सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नं गन्धमाल्यनिषेवणम्॥
> धन्यं मङ्गल्यमायुष्यं श्रीमद्व्यसनसूदनम्।
> हर्षणं काम्यमोजस्यं रत्नाभरणधारणम्॥

निर्मल वस्त्रोंका धारण करना—सुन्दर, यश देनेवाला, आयुवर्धक दारिद्रको दूर करता है, हर्ष उत्पन्न करता है; सज्जन या बड़े लोगोंकी समाज में प्रशस्त है। सुगन्ध और मालाका सेवन वृष्य, सुगन्धदायक, आयुष्य, कामना देनेवाला; पुष्टि और बलदायक है, मनको प्रसन्न रखता है और दारिद्रको दूर करता है। रत्न और आभूषणका पहिनना धन्य है, मंगलमय है, आयुष्य, शोभायुक्त है तथा सर्प पिशाचादिको दूर करता है, हर्षदायक, काम्य और ओजवर्धक भी है।[1]

---

१. चरकको कनिष्कका राजवैद्य कहा जाता है; जिसने अत्रिपुत्रसे उपदेश दिये अग्निवेश तन्त्रका प्रति संस्कार किया था। सुश्रुत वाकाटक कका लबना माना जाता है—[देखिए अत्रिदेव विद्यालंकारका 'आयुर्वेद का बृहद् इतिहास'।

मनुष्यको उठकर किस प्रकार अपना दैनिक कार्य करना चाहिए इसका विस्तृत उल्लेख इन ग्रन्थोंमें है; यथा—प्रातःकाल उठकर नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर उसे दातौन, आँखोंमें अंजन, शिरपर अभ्यंग, शरीर पर स्नेहका अभ्यंग, व्यायाम, स्नान, धूमपान आदि दैनिक कार्य करना चाहिए। इनमें उसे मुखपर लेप तथा मुखको लोध्रके पानी या आंवलेके कषायसे धोना चाहिए। उद्वर्त्तन लगानेसे शरीरमें कोमलता और सौन्दर्य आता है। स्नानके पीछे शरीरपर चन्दन आदिका लेप करना चाहिए। उसे निर्मल वस्त्र पहिनना चाहिए, पैरमें जूता, हाथमें छाता अथवा लकड़ी लेकर बाहर जाना चाहिए।[1]

---

१. सुश्रुतके चिकित्सा स्थानके २४ वें अध्यायका नाम 'अनागत-बाधा प्रतिषेध' है; इसमें स्वास्थ्य रक्षाके उपाय बताये हैं; यथा—

तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम्।
कनीष्ठिका परिणाहं ऋज्वग्रन्थिमव्रणम्॥
भिल्लोदककषायेण तथैवामलकस्य वा।
प्रक्षालयेन्मुखं नेत्रे स्वस्थः शीतोदकेन वा॥
तेजोरूपावहं चैव सहते मारुतातपौ।
न नेत्ररोगा जायन्ते तस्मादञ्जनमाचरेत्॥
कर्पूरजातिकंकोल - लवंग - कटुकाह्वयैः।
सचूर्णपूगैः सहितं पत्रं ताम्बूलजं शुभम्॥
अभ्यंगो मार्दवकरः कफवातनिरोधनः।
धातूनां पुष्टिजननो मृजावर्णबलप्रदः॥
जलसिक्थस्य वर्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरास्तरोः।
तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते॥
शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।
तत् कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात् समन्ततः॥

कामसूत्रमें भी इस सम्बन्धमें कुछ संकेत दिये हैं, यथा—नागरिकको चाहिए कि प्रातःकाल उठकर शौचादि नित्य क्रियासे निवृत्त हो, दाँतोंको साफकर उचित मात्रामें चन्दन केसरका लेप करे, धूपसे वासित वस्त्र एवं पुष्पमाला पहिनकर अपने हाँथोंको लाखके रंगसे रंगकर और उसपर स्निग्धताके लिए मोम घिसकर दर्पणमें मुँह देखे; सुगन्धित पान खाकर काममें लगे। स्नान प्रतिदिन, दूसरे दिन उत्सादक, तीसरे दिन फेनक [रीठेका या बेरके पत्तोंका पानी] स्नानमें बरते; चौथे दिन, पाँचवें दिन या दसवें दिन बालोंको कटवाए।[1]

शय्याके पास छोटी-सी चौकी होनी चाहिए, उसके ऊपर केसरका

उद्वर्त्तनं कफहरं कफमेदोविलेपनम्।
स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम्॥
उद्घर्पणोत्सादनाभ्यां जायेयातामसंशयम्।
उत्सादनाद् भवेत् स्त्रीणां विशेषात् कान्तिमद्वपुः॥
तन्द्रा पाप्मोपशमनं तुष्टिदं पुंस्त्ववर्धनम्।
रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम्॥
मुखालेपाद् दृढं चक्षुः पीनगण्डं तथाननम्।
अव्यंगपिडकं कान्तं भवत्यम्बुजसन्निभम्॥
पक्ष्मलं विशदं कान्तममलोज्ज्वलमण्डलम्।
नेत्रमञ्जनसंयोगाद् भवेच्चामलतारकम्॥

१. [क] स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः गृहीतदन्तधावनः मात्रयाऽनुलेपनं धूपंस्रजमिति गृहीत्वा, दत्त्वा सिक्थकमलक्तकञ्च दृष्ट्वाऽऽदर्शे मुखं गृहीतमुखवासताम्बूलः कार्याणि अनुतिष्ठेत्॥

[ख] नित्यं स्नानं द्वितीयकमुत्सादनं तृतीयकः फेनकः चतुर्थकमायुष्यम् पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम्॥ कामसूत्र १।१६'१७'

लेप; पुष्पमाला; मोमका डिब्बा; सुगन्धपात्र; बिजौरेकी छाल और पान रखने चाहिए।[1]

कामसूत्रमें पतिके पास पत्नीके जानेके लिए जो निर्देश दिये हैं, उनमें स्पष्ट किया है कि आभूषण पहिनकर, विविध सुगन्धित लेप लगाकर, भिन्न-भिन्न अंगराग चुपड़कर, उज्ज्वल वस्त्र पहिनकर जाये। कभी भी पतिके सामने विना शृंगार किये या अलंकार धारण किये विना न जाये[2]।

इस समयकी स्त्रियाँ स्वभावतः अपनेको सुन्दर दिखाना चाहती थीं, इसलिए प्रसाधनकी ओर विशेष रुचि थी। सामान्य परिस्थितियोंमें प्राप्त साधनोंसे इसी रुचिके अनुसार अपने-अपने शरीरको सजाया जाता था। स्त्रियोंका प्रसाधनसे प्रेम है; इसीलिए कुछ बातें उनके सौभाग्य—पतिकी मंगल कामनाके लिए हैं, यथा—हल्दी, केशर, सिन्दूर, अंजन, अंगराग लगाती हैं। कबरी बाँधना, कानोंमें फूल, हाथोंमें चूड़ी, मांगल्याभरण, सब सौभाग्य चिह्न स्त्री अपने शृंगारके लिए धारण करती हैं।

स्त्री और पुरुष दोनों नूतन-सुगन्धित फूलोंको धारण करते थे, लेप, अंगराग, सुगन्ध लगाते थे। गालों और स्तनोंपर सुन्दर चित्रकर्म भक्ति करते थे; यथा—

---

१. वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुंगत्वचस्ताम्बूलानि च स्युः ॥ कामसूत्र० १।७।८.

२. [क] बहु भूषणं विविधकुसुमानुलेपनं विविधांगरागसमुज्ज्वलं वासः इत्याभिगामिको वेषः।—कामसूत्र ४।२४

[ख] नायकस्य च न विमुक्तभूषणं विजने संदर्शने तिष्ठेत।

—कामसूत्र ४।१३

[ग] प्रतनुश्लक्ष्णाल्पदुकूलता परिमितमाभरणं सुगन्धिता नात्युल्वणमालेपनं शुक्लान्यन्यानि पुष्पाणीति वैहारिको वेषः।

—कामसूत्र ४।२५

निःशेषश्च्युतचन्दनं स्तनतटं निमृष्टरागोऽधरे
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिते तन्वी तवेयं तनुः ।

—साहित्य दर्पण ।

बालोंकी रचना भिन्न-भिन्न रूपमें अपनी- अपनी रुचिके अनुसार करती थीं । [१—अलके बालकुन्दानुविद्धम्, २—चूड़ापाशे नवकुरवकं, ३—अलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः —मेघदूत] । बालोंको वेणीके रूपमें बाँधकर उनमें फूल लगाती थीं ।

भिन्न-भिन्न ऋतुमें भिन्न-भिन्न प्रकार के अङ्गराग शरीरमें लगाये जाते थे । यथा; शीतऋतुमें—शरीरपर अगरुका

गाढ़ा लेप करते थे । केशरका लेप किया जाता था । धूपसे वासित हल्के परन्तु गरम वस्त्र धारण करनेका उल्लेख है ।

वसन्त ऋतुमें—चन्दन और अगरु दोनोंका लेप करना चाहिए [इस ऋतुमें शीत साधारण रहता है, साधारण ऋतु है ।] ग्रीष्म ऋतुमें—चन्दन का लेप एवं यंत्रधारा [पानीके फुव्वारे] जहाँ चल रहे हों, धारागृह [पानी जहाँ टपक रहा हो]; ऐसे घरोंमें दिनका समय बिताये । रात्रिमें खुले मैदानमें आकाशके नीचे, मकानकी छतपर, शरीर पर कपूर और चन्दनका गीला लेप करके, फूलोंसे सुगन्धित विस्तरपर सोये । वर्षाकालमें—अगरुका लेप करे । प्रवर्षण, उद्वर्तन, स्नान, वस्त्रों और बालोंको धूप, सुगन्ध देना आदि आवश्यक है । विचित्र प्रकारकी माला और वस्त्र धारण करे । शरद् कालमें—हल्के, श्वेत वस्त्र पहिने, माला धारण करे, ठण्डा खशका

लेप करे। मकानकी छतपर बैठकर चन्द्रमाकी किरणोंका आनन्द ले।[1]

इस समय तामिल देशके स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने प्रसाधन और शृंगारके लिए प्रसिद्ध थे। वे सुगन्धित तेल और लाल एवं पीले रंग प्रायः पसन्द करते थे। स्त्रियाँ आँखोंमें अञ्जन लगाती थीं, घरोंमें सुगन्ध तथा चन्दनका चूरा जलाती थीं; प्रलेप और प्रसाधन सब समयोंमें बरते जाते थे। सामाग्रीकी माँग इतनी अधिक थी, कि कावेरीपत्तनम्‌की गलियोंमें लोग घूम-घूमकर बेचते थे। स्नानचूर्ण; लेप, अंगराग, शीत लेप, फूल, सुगन्ध-धूपवत्तीको घर-घर जाकर लोगोंको देते थे। समुद्रके किनारे भी प्रसाधन द्रव्य बिकते थे। [ये सुगन्धित द्रव्य सम्भवतः बाहरसे भी आते थे; जैसा कि लंवगके नामसे स्पष्ट है—**"द्वीपान्तरानीत लंवग-पुष्पै रपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः"—रघुवंश० ६।५७**]।

सुश्रुत तथा दूसरे आयुर्वेद ग्रन्थोंमें स्वास्थ्यके लिए जो नियम बताये हैं; उनमें सबसे प्रथम ब्राह्ममुहुर्त्तमें उठना आवश्यक है। सूर्यकी प्रथम किरणें भूमिपर स्पर्श करनेसे पूर्व मनुष्यको शय्या छोड़ देनी चाहिए। उसके उपरान्त अपने दैनिक कार्य समाप्त करके दाँतोंकी सफ़ाईका विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए दातौन और मंजन करना चाहिए।[2]

---

१. १—शीतऋतुमें—कुंकुमेनानुदिग्धाङ्गोऽगुरुणा गुरुणाऽपिवा। २—वसंतमें—स्नातः स्वलंकृतः स्रग्वी चन्दनागुरुरूषितः। ३—ग्रीष्ममें—तालवृन्तानिलान् हारानूस्रजः कमलोत्पलः। तन्वीर्मृणालवलयाः कान्ताश्चन्दनरूषिताः। ४—वर्षा ऋतुमें—प्रघर्षोद्वर्त्तनस्नानधूमगन्धागुरुप्रियः। यायात्करेणुमुख्याभिश्चित्रस्रग्वस्त्रभूषितः। ५—शरदऋतुमें—लघुशुद्धाम्बरस्रग्वी शीतोशीर विलेपनः। सेवेत चन्द्रकिरणान् प्रदोषे सौधमाश्रितः॥

—संग्रह सूत्र० अ० ४

२. सुश्रुत० चि० अ० २४; चरक० सूत्र० अ० ५; संग्रह—सूत्र० अ० ३, देखें।

दातौन—इसकी लम्बाई १२ अंगुल और मोटाई कनिष्ठिका अंगुलीके बराबर होनी चाहिए। सीधी, बिना गाँठकी, तथा कानी या छेदवाली नहीं होनी चाहिए। यह ताज़ी-हरी एवं अच्छी भूमिपर उत्पन्न लेनी चाहिए। दातौनका चुनाव ऋतु, देश, रस, वीर्यके अनुसार करना चाहिए। कषाय रस, मधुर, तिक्त और कटुरसकी दातौन अच्छी है। इसके लिए नीम, खैर, महुआ, और करंजकी दातौनकी प्रशंसाकी गई है। दातौन करते समय एक-एक दाँतको अलग-अलग साफ करना चाहिए। मसूड़ोंको हानि नहीं पहुँचे इसका ध्यान रखे; दातौनकी कूची नरम बनानी चाहिए। मंजन—तेजवती [तेजबलके छालके] चूर्णसे दाँतोंको नित्यप्रति साफ़ करे; मधु,सोंठ, मरिच, पिप्पली, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कटुतैल और सैन्धव नमक, तेजबलका चूर्ण मिलाकर मंजन करे।

जिभ्भी—जीभके ऊपर जमी मैलको दूर करनेके लिए स्वर्ण, चाँदी या वृक्षकी जिभ्भी बरतनी चाहिए। इसकी लम्बाई दस अंगुल होनी चाहिए। दाँतोंको मजबूत करनेके लिए तैलके कण्डूषको मुखमें रखना चाहिए [**तैलगण्डूषाभ्यासो दन्तबलरुचिकराणां श्रेष्ठतमाः—चरक० सूत्र० अ० २५।४०**]।

मुखप्रक्षालन—मुखको पीपल, पिलखन, बरगद, गूलर, अथवा जामुन की छालोंके क्वाथमें दूध मिलाकर धोना चाहिए। अथवा लोध्रकी छालके क्वाथसे या आँवलेके पानीसे मुखको धोना चाहिए [कादम्बरीमें शूद्रकके तथा नलचम्पूमें राजाके स्नानके समय आँवलेका चूर्ण सिरपर लगानेका उल्लेख है]। अथवा ठण्डे जलसे मुख और नेत्रको धोये। इनसे धोनेपर नीलिका [मुखकी झाँई]; मुखका सूखना, गाल पिचकना; पिडका [छोटी-छोटी फुंसियाँ], व्यङ्ग [कालापन], रक्त-पित्तसे उत्पन्न रोग शान्त होते हैं।

अंजन—आँखोंमें अँजन करनेसे मनुष्य बारीक वस्तुको भी सहज रूपमें स्थिर दृष्टिसे देखता है। सिन्धु देशका स्रोताञ्जन [सुवीरा नदीमें उत्पन्न अंजन] सबसे श्रेष्ठ है।

ताम्बूल सेवन—कपूर, जातीफल, कक्कोल; लंवग, कटुक-कत्था, चूना, सुपारीके साथ पान खाना उत्तम है। इससे मुखमें निर्मलता, सुगन्धि, शोभा, सौष्ठव उत्पन्न होती है।

शिर पर अभ्यङ्ग—शिरपर तैल लगानेसे शिरके रोग नष्ट होते हैं; बालोंमें कोमलता, मसृणता और कान्ति आती है; बाल लम्बे, घने और काले होते हैं। चेहरेकी त्वचा निर्मल होती है।[1]

बालोंपर लगानेके तैल—मुलैहठी; विदारी कन्द [सराल कन्द अच्छा है], सरल, देवदारु; कटेरी, बड़ी कटेरी, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, गोखरु इनको समान भागमें लेकर इनके क्वाथ और कल्कसे कोल्हूसे ताजा निकाला तिलका तेल पकाये। इसके लगानेसे शिरमें शीतलता रहती है।[2]

---

१. तैलं निर्पीडितं राम ! तिलैः पुष्पाधिवासितैः।
वासनात् पुष्पसदृशं गन्धनं तु भवेद् ध्रुवम्॥—अग्निपुराण २२३।३३

२. बालोंपर लगानेके लिए दूसरे भी तेल सुश्रुतमें हैं, यथा—
सैरीयजम्बवार्जुनकाश्मीरजं पुष्पं तिलान्मार्कव चूतबीजे।
पुनर्नवे कर्दमकण्टकार्यौ कासीसपिण्डातकबीजसारम्॥
फलत्रयं लोहरजोऽञ्जनं च यष्टाह्वयं नीरजसारिवे च।
पिष्ट्वाऽथ सर्वं सह मोदयन्त्या साराम्भसा बीजकसंभवेन॥
साराम्भसः सप्तभिरेव पश्चात् प्रस्थैः समालोड्य दशाहगुप्तम्।
लोहे सुपात्रे विनिधाय तैलमक्षोद्भवं तच्च पचेत् प्रयत्नात्॥
पक्वं च लौहेऽभिनवे निधाय नस्यं विदध्यात् परिशुद्धकायः।
अभ्यंगयोगैश्च नियुज्यमानं भुञ्जीत माषान् कृशरामथो वा।
मासोपरिष्टाद् घनकुञ्चिताग्राः केशा भवन्ति भ्रमराञ्जनाभाः॥
—सुश्रुत० चि० अ० ३१।३२-३६.

बालोंमें कंघी करनी चाहिए—इससे बालोंकी धूल; जूँ आदि कीड़े और मैल दूर होती हैं। कानोंमें तैल डालनेसे गर्दन, हनु, शिर और कानका दर्द दूर होता है।

अभ्यंग—सारे शरीपर तैलकी मालिशसे शरीरकी त्वचा कोमल बनती है; धातुएँ पुष्ट होती हैं, रंग निखरता है; सफ़ाई होती है और बल आता है। जिस प्रकार जलके सिंचनसे पौधे बढ़ते हैं, उसी प्रकार तैलके सिंचनसे धातुओंकी पुष्टि होती है। तैल रोम कूपों द्वारा धमनियोंसे, शिराओंमें पहुँचकर शरीरमें बल देता है। सुश्रुतमें प्रकृति, सात्म्य, देश, ऋतु, दोष, रोगकी दृष्टिसे तैल या घृत किसी एकसे अभ्यंग करनेको कहा है।

व्यायाम—जिस किसी कार्यसे शरीरमें थकान हो, उसको व्यायाम कहते हैं। व्यायाम करनेसे शरीरमें वृद्धि होती है; कान्ति आती है, अंगोंका गठन मजबूत होता है, अग्नि बढ़ती है, शरीरमें हल्कापन एवं दृढ़ता आती है। आरोग्य मिलता है, चर्बीको कम करनेके लिए इससे बढ़कर दूसरा उपाय नहीं है। शरीरमें जल्दी बुढ़ापा नहीं आता। व्यायाम करनेके पीछे सारे शरीरको शनैः शनैः मलना चाहिए।

उबटन—वायु नाशक, और मेदको लीन करता है, अंगोंको दृढ़ बनाता है, त्वचाको निर्मल करता है। उत्सादन [**स्नेहकल्केन उद्घर्षणम्**—तैल मिलाकर उबटन लगाना] तथा उद्घर्षण ही से [**अस्नेहौषधचूर्णादिभिः घर्षणम्**—विना स्नेहके चूर्ण आदि मलना, मूँगका आटा मलना आदि] सिराओंका मुख खुलता है, त्वचामें स्थित भ्राजक अग्नि बढ़ती है। उत्सादनसे स्त्रियोंका शरीर विशेष रूपसे सुन्दर हो जाता है [इसीसे पार्वतीके शरीरपर स्त्रियोंने उबटन लगाया था; यथा "**तां लोध्रकल्केन हृताङ्गतैलमाश्यानकालेयकृताङ्गरागाम्। वासो वसानामभिषेकयोग्यां**"—कुमार ७।९. उद्घर्षणसे कण्डू, कोठ-फुंसियाँ वायु नष्ट होती है। फेनक [रीठे या नीमके पत्तोंका लेप आदि], जंघाओंमें लघुता और दृढ़ता

देता है [जंघाओंके आपसमें रगड़नेसे या घोड़ेकी सवारीसे त्वचामें कर्कशता, विवर्णता आ जाती है, उसके लिए फेनकका उपयोग करते हैं ।] ईंट आदि वस्तुओंसे [झाँवा, स्पंज, रबड़ आदिका] शरीरको रगड़नेपर कण्डू और कोठ नष्ट होते हैं ।

स्नान—निद्रा, श्रम, दाह, आलस्य आदि स्नानसे दूर होता है; इन्द्रियोंमें चेतना आती है, मन प्रसन्न होता है, रक्त निर्मल होता है । पुरुषत्व दृढ़ होता है । गरम पानीसे शिरको धोना आँखोंके लिए हानिकारक है, शीतल पानीसे शिर धोना आँखोंके लिए उत्तम है । ऊष्ण पानीसे स्नान औषध दृष्टिसे ही करना चाहिए । कटिसे निचले भागको गरम पानीसे धोनेपर अंगोंमें बल आता है ।

मुखपर लेप—मुखपर लेप लगानेसे आँखोंमें दृढ़ता, कपोलोंमें भराव, मुखमें पीनता आती है । मुखकी फुंसियाँ नष्ट होती हैं, मुख कमलके समान होता है; मुखकी मालिश भी करनी चाहिये ।

काजल—आँखोंमें काजल लगाना पलकोंके बालोंको घना और स्वच्छ बनाता है; दृष्टिको निर्मल करता है आँखें सुन्दर एवं उज्ज्वल हो जाती हैं ।

पैरोंका धोना—पैरोंकी मैल, थकान और रोगको दूर करता है, आँखों को निर्मल बनाता है, रक्षोघ्न है । इसके पहले जूता, छाता, दण्ड, पगड़ी, माला, रत्न धारण करनेकी प्रशस्ति और लाभ बताये हैं, जिनके बरतनेसे स्वास्थ्य अच्छा रहता है ।

संवाहन—प्रीति-प्रसन्नता उत्पन्न करता है, निद्रा लाता है; कफ, वायु और श्रमको दूर करता है, वृष्य है, मांस, रक्त, त्वचाको निर्मल करता है ।[१]

---

१. [क] शर्विलक—आर्ये ! पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः, गृहपतिदारकोऽहम् । संवाहकवृत्तिमुपजीवामि ॥
वसन्तसेना—सुकुमारा खलु कला शिक्षिता आर्येण ।
शर्विलक—आर्ये ! कलेति शिक्षिता; आजीविका इदानीं संवृत्ता ।

सामान्यतः स्नान नदी, तालाब और कुओंपर किया जाता था। परन्तु धारागृहोंका उपयोग भी होता था [**धारागृहं भूमिगृहं सुशीतं—चरक**]। अमीर लोग स्नानके लिए सुगन्धयुक्त पानी बरतते थे, जिससे शरीर-की दुर्गन्ध दूर हो जाये [**यथा कादम्बरीमें—काञ्चिन्मलयसरित इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन"—कादम्बरी**]। दिव्यावदानमें दूध, केसर, कर्पूर और अन्य सुगन्धित वस्तुएँ पानीको सुगन्धित करनेके लिए डालनेके लिए लिखी हैं। सुश्रुतमें नागचम्पा, कमल, पाटला आदिके पुष्प डालनेको लिखा है, [**"नागचम्पकोत्पलपाटलापुष्पप्रभृतिश्चाधिवासनमिति"—सुश्रुत सू० अ० ४५।१२**]। अग्निपुराणमें—बेल, आम, जामुन, करवीर थोड़ी कस्तूरी पानीमें मिलानेका उल्लेख है [अग्निपुराण. २२१। २१-२२]। दूसरे स्थान पर–दालचीनी, नाड़ी, ग्रन्थिपर्णा, शैलेय, तगर, क्रान्ता; कोल [बेर]; कर्पूर, मांसी [छड़ीला]; बोल [विजयसार], कुष्ठ इन वस्तुओंको कस्तूरीके साथ मिलाकर पानीमें डालनेका उल्लेख है, इससे भी पानी सुगन्धित होता है [अग्निपुराण–२२२-२७-२६]।[1]

शरीरकी दुर्गन्ध और पसीनेकी बदबूको दूर करनेके लिए स्त्रियाँ शरीर को सुगन्धित लकड़ियोंसे बने चौकोंसे मलती थीं। सुगन्धित चूर्णका शरीर पर उबटन भी लगाती थीं। घरको सुवासित करनेके लिए चन्दन, अगरु, विजयसारका धुवां कमरोंमें दिया जाता था। वस्त्रोंकी दुर्गन्धको मिटानेके लिए इनको भी धूप दिया जाता था [**धूपनानि पुनर्वाससां शयनास्तरण-प्रावरणानां च यवसर्षपातसी हिंगुगुग्गुलवचा चोरकवयःस्थागोलोमीजटिला-**

[ख] **"उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलम्"—कामसूत्र, संवाहनको चौसठ कलाओंमें कला गिना है।**

१. मुक्ताकलापा शशिरश्मिशुभ्रा मृणालपद्मोत्पलपत्ररम्याः।
सेकावगाहाः सजला जलार्द्रा वाता सुशीता मणयो महार्हाः॥
—संग्रह चि० ५.

पलङ्कषाशोकरोहिणीसर्पनिर्मोकानि घृतसिक्तानि स्युः—चरक]। धूप देनेके सिवाय वस्त्रोंपर सुगन्ध लगाई जाती थी; जिससे इनकी दुर्गन्ध जाती रहे। सुगन्धि लेपमें रोग निवारणके गुण भी रहते थे। जिससे शरीरकी दुर्गन्ध दूर होनेके साथ ओज भी बढ़ता है। दिव्यावदानमें लिखा है कि बुद्धके सोपारामें आनेपर गलियों और सड़कोंपर चन्दनके पानीका छिड़काव किया गया था। धूप घटिकाओंसे सड़कोंको सुवासित किया गया था, फूलोंकी माला टाँगी गई थी। अयोध्याकी सड़कों पर सुगन्धित जल छिड़का जाता था [**मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः—वा० रा० १।५।८**] अष्टाङ्ग संग्रहमें भी मद्यपानके स्थानको सुगन्धित जलसे छिड़ककर सुवासित करनेका उल्लेख है [**आपानभूमिमथ गन्धजलाभिषिक्तामाहारमण्डपसमीपगतां श्रयेत ॥ संग्रह० चि० मदात्यय ५**]। बच्चोंकी क्रीड़ाभूमिमें भी छिड़काव करनेका उल्लेख है [**क्रीडाभूमिसमा कार्या निश्शस्त्रोपलशर्करा। वेल्लोषणकणाम्भोभिः सिक्ता निम्बोदकेन वा ॥—संग्रह० उत्तर. १**]।

चन्दनका लेप मुख्य था, इसे स्त्री और पुरुष दोनों बरतते थे, इसमें गोशीर्ष और हरिचन्दनका लेप मुख्य था। [**मनोऽनुकूला हरिचन्दनार्द्रास्तृड् दाहमूर्छादवथून् जयन्ति–संग्रह०चि०६**]। चन्दनके सिवाय दूसरी वस्तुओंका लेप भी गरमी और शरीरकी दुर्गन्ध कम करनेके लिए होता था; यथा—

प्रियंगुपत्रप्लवलोध्रसेव्यह्रीवेरकालेयकनागपुष्पैः।
शीताम्बुपिष्टैः नव कर्परस्थैः तृड् दाह हा सर्वशरीरलेपाः ॥

—संग्रह० चि० ६।

प्रियंगुपत्र, केवड़ी मोथ, लोध, खश, बालक-सुगन्धवाला, कालेयक, नागचम्पा इनको शीतल जलसे पीसकर मिट्टीके नये बर्त्तनमें रखकर सारे शरीरपर लेप करना चाहिए। इससे प्यास और दाह नष्ट होती है।

सुगन्धको बोतलोंमें रक्खा जाता था, इत्र छिड़कनेके लिए गुलाबपाश होता था। बालाहिसारसे एक गुलाबपाश मिला है जिसके नीचे बहुतसे छेद बने हैं, और उसका मुख इतना बारीक है कि अंगुलीसे बन्द किया जा सकता है। दूसरा गुलाबपाश तक्षशिलामें मिला है।

मुख और शरीरपर छिड़कनेके लिए सुगन्धित चूर्ण बरता जाता था, यह चूर्ण अगरु और लोध्रसे बनाया जाता था। इसके सिवाय तगर और चंदनका चूर्ण भी बदनपर छिड़कते थे। [**नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुता-माननें श्रीः—मेघदूत० उ० २**]।

आँखोंमें काजल लगानेके अतिरिक्त ओठ और दाँत भी रंगे जाते थे। ओठोंका लाक्षारस या अश्मराग [सम्भवतः मुर्दाशंख yellow Lead oxide] से रँगा जाता था [भरत नाट्य शास्त्र—२१।२५-३१]।

दाँत सफ़ेद [कुन्दके फूल जैसे श्वेत] पसन्द किये जाते थे—सफ़ेद मोतीके समान चमकवाले दाँत प्रायः आकर्षक होते हैं। परन्तु कभी-कभी इनको रंगा भी जाता था [जैसा आजकल मिस्सी लगाकर लाल, काला करते हैं]। सुन्दर औरतें अपने दाँतोंको मोतीके समान स्वच्छ रखती थी या इनको लाल कमलके परागसे रंगकर लाल करती थीं [भरत-नाट्य-शास्त्र—२१।२८-३२][1]। कामसूत्रमें दाँतोंको रँगनेकी कलाको भी गिना है [**दशनवसनाङ्गरागः—कामसूत्र**]।

ईस्वी सन्के प्रारम्भ होनेके दिनोंमें स्त्रियाँ अपने वक्ष, कपोल और कन्धोंपर सामान्य रँगोंसे सुन्दर नमूने चित्रित करनेका शौक रखती थीं। गालोंपर रंग चित्रण करनेकी प्रथा इतनी अधिक थी कि वात्स्यायनने इसे

---

१. दन्तानां विविधा रागाश्चतुर्णां शुक्लता तथा।
रागान्तरविकल्पार्थं शोभनेनाधिकोज्ज्वला॥
मुग्धानां सुन्दरीणं च मुक्ताभाः सितशोभनाः।
सुरक्ता वापि दन्ता स्युः पद्मपल्लवरञ्जना॥

—नाट्य० २१।२५

अपनी ६४ कलाओंमें गिना है [**विशेषकच्छेद्यम्—कामसूत्र**]। नमूनेको [भक्ति] लाखके रससे चित्रित किया जाता था, अथवा अशोक वृक्षकी बालकलिकाके रूपमें मिलते हुए रंगसे चित्रित करते थे। पान या तमाल के पत्तोंसे बहुत ही सुन्दर नमूने [वैशेषिक] कपोल और माथेपर बनाये जाते थे। पत्रांगुली [Paint stick] की सहायतासे चेहरेपर नमूने खींचे जाते थे। कभी-कभी तमालके पत्तेसे नमूना काटकर कपोलपर चिपका दिया जाता था और शेष भागको लाल रंग देते थे। आजतक मथुरामें इस प्रकारके चित्रांकनकी प्रथा है, जो कि विवाहके समय बरती जाती है। कालिदासने इसी प्रकारके पत्रच्छेदोंको अभिसारिकाओंके चेहरेपर से गिरनेका उल्लेख किया है [**पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशि-भिश्च—मेघदूत० उत्तर० ११**]। छाती और कन्धेपर भिन्न-भिन्न नमूने चित्रित किये जाते थे।

ओठ और गालोंपर लाल रंग लगाया जाता था, पैरोंपर आजकी भाँति लाखका रंग या महावर लगाते थे [**लाक्षारागं चरणकमल न्यासयोग्यं च यस्याम्—मेघदूत० उत्तर० १२.**]। दक्षिणमें कभी-कभी सिन्दूरसे स्तन भी रँगे जाते थे [चन्दन स्तनोंपर लगता था—**निःशेषश्च्युतचन्दनं स्तनतटं निमृष्टरागोऽधरे**], रंगमें कभी-कभी घी मिलाया जाता था। हल्दीसे भी रँगनेका काम लिया जाता था [इसीसे हल्दीके पर्याय कामिनी, कान्ता, वर्ण्य आदि हैं]।

भारतीयोंको फूलोंका भी बहुत शौक था। फूलोंसे शरीरको सजानेके साथ-साथ इनसे नाना प्रकारकी मालाएँ भी बनाते थे। वात्स्यायन कामसूत्रमें माला गूँथनेको एक कला कहा है [**माल्यग्रथनविकल्पाः —कामसूत्र**]; फूलोंसे शिरका जूड़ा गूँथा जाता था [**शेखरकापीड़ यो-जनम्**]। भरत नाट्यशास्त्रमें पाँच प्रकारकी माला बतलाई हैं। चेष्टित,

वितत, संघात्य, ग्रंथिम, प्रलम्बित।[1] मालाके लिए दाम शब्द भी आया है, जो मोटी मालाको सूचित करता है। माला गलेमें पहिनते थे और आपीड़ बालों के जूड़ेमें बाँधा जाता था। बालोंमें फूल खोंस दिये जाते थे [अलके बाल कुन्दानुविद्धम्, २—अलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः, ३—चूड़ापाशे नवकुरबकं, —मेघदूत]। कानोंके आभूषण भी फूलोंसे बनाये जाते थे [पुष्पोद्भेदैः सह किसलयैः भूषाणानां विकल्पम्; २—चारुकर्णे शिरीषम्]। फूलोंसे कर्णपत्र भी बनाना चौंसठ कलाओंमें एक कला है।

दक्षिण भारतमें स्त्री और पुरुष दोनों ही फूलोंसे अपना श्रृंगार करते थे। पुष्पोंका उपयोग शय्याके सजाने और सुगन्धित करनेमें भी होता था। [१—रात्रौ चाकाशतलके सुगन्धिकुसुमास्तृते—संग्रह। २—सुपुष्पधूपोज्ज्वल-राशिवासितम्—नागरसर्वस्व]।[2] वस्त्रोंको और घरोंको सुगन्धित सुवासित करनेकी प्रथा थी। अमीर लोग कपड़ों पर गन्ध लगाते थे। मृच्छकटिकमें चारुदत्तका उत्तरीय सुगन्धसे भरा हुआ कहा गया है, यद्यपि यह उत्तरीय फट गया था परन्तु तो भी इसकी गन्ध बनी हुई थी।[3] वस्त्रोंको सुवासित करनेका उल्लेख सौन्दरानन्द में भी है [वासोऽङ्गना काचिदवास-

१. चेष्टितं विततं चैव संघात्यं ग्रथिमं तथा।
प्रलम्बितं तथा चैव माल्यं पञ्चविधं स्मृतम्॥ —नाट्य २१।११

२. विवाहके चौथे दिन पुष्पशय्या बनानेमें शय्यापर जहाँ फूल बिछाये जाते थे वहाँपर वर और वधू दोनोंका श्रृंगार फूलोंके आभूषणोंसे किया जाता था।

३. वसन्तसेना—कर्णपूरक! जानीहि तावत् किमेष जातीकुसुम-वासितः प्रावारको न वेति।

कर्णपूरक—आर्ये! मदगन्धेन सुष्ठु तं गन्धं न जानामि।

—मृच्छकटिक २ रा अंक

यच्च —४।२६]। अग्निपुराणमें [२२३।२१–२५] घर और वस्त्रोंमें धूम दिये जाने वाली वस्तुओंकी सूची दी है, जिनकी संख्या अट्ठाईस है। चन्दन, अगुरु और कालानुसारीको मिलाकर उत्तम सुगन्ध बनाई जाती थी। गन्धवर्त्तिका जलाई जाती थी। गन्धवर्त्तिकाको जलानेका रिवाज इस समयमें बहुत था, क्योंकि इनको जिनमें रखकर जलाते थे ऐसी मिट्टीकी गोलियाँ बहुत सी मिली हैं। इनमें वर्त्ति रखनेके लिए छेद बने हैं।

पान खानेकी प्रथा भी बहुत थी; स्नानके पीछे, भोजन कर चुकनेपर अभ्यंग तथा सोकर उठकर पान खाया जाता था। पानमें लौंग, कर्पूर, जातीफल, जावित्री, सुपारी, कत्था, चूना होता था। श्वासमें सुगन्ध लानेके लिए सुगन्धित गोली भी खाते थे। कामसूत्रमें बिजौरेकी छालका उपयोग करनेको लिखा है [**मातुलुंगस्त्वचस्ताम्बूलानि च स्युः—कामसूत्र**] अग्निपुराणमें २२३।३४ में मुख वास दिये हैं]।

केशविन्यास

बालोंके लिए अलक, कुन्तल, चिकुर आदि शब्द आये हैं। सुगन्धित

बालोंके लिए चूड़ापाश, कबरी, वेणी आदि शब्द आते हैं। डाक्टर वासुदेवशरणजी अग्रवाल की मान्यता है, कि अलकसे अभिप्राय घुंघराले बालोंसे है। उनका कहना है कि '**अलकाश्चूर्ण कुन्तला**' अमरकोशका यह वचन स्पष्ट करता है कि अलकावली बनानेमें चूर्णका उपयोग होता था। चूर्णसे तात्पर्य कुंकुम कपूर आदि सुगन्धित पिष्ठीसे है, जिसके द्वारा बालोंमें बल डाले जाते थे। इसकी पुष्टि कालिदासके नीचेके श्लोकसे होती है।

भयोत्सृष्टविभूषाणां तेन केरलयोषिताम्।
अलकेषु चमूरेणुश्चूर्ण प्रतिनिधिकृतः॥ —रघु० ४।५४

अर्थात् केरली स्त्रियोंके अलकोंका श्रृङ्गार रघुकी सेनासे उठी हुई धूलने चूर्णके स्थानपर किया। बल खाई लटोंके लिए अरालकेशी शब्द आता है, जिसका अर्थ है, कुटिल केश या प्रशस्त केशवाली [भित्वा निराकामदरालकेश्याः—रघु० ६। ८१]। मेघदूतमें कविने अलक, सीमान्त, चूड़ापाश इन तीन शब्दोंका प्रयोग किया है [१ **अलके बालकुन्दानुविद्धम्**]। २—**चूड़ापाशे नवकुरबकं; ३. सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्—मेघदूत० उत्तरमेघ २**]। माँगको सीमन्त कहते हैं; मल्लिनाथने इसका अर्थ मस्तक केशवीथी किया है। चूड़ापाश वह जूड़ा है—जिसे स्त्रियाँ सिरके पीछे बाँधती हैं; आज भी चूड़ाके लिए हिन्दीमें जूड़ा शब्दका प्रयोग होता है। तीसरा प्रकार अलक है इसकी व्याख्यामें मल्लिनाथने "**स्वभाववक्राण्यलका-**

नि तासाम्" यह एक प्रसंगोपात्त उदाहरण दिया है, जिससे इतना तो प्रकट होता है कि अलकोंमें कुछ वक्रता या घुमाव रहता था; परन्तु अलकोंका स्पष्ट रूप कुछ पता नहीं होता।

सौभाग्यसे रघुवंशके अष्टम सर्गमें इन्दुमतीके केशोंका वर्णन करते हुए कालिदासने अलकोंके स्वरूपके विषयमें जो स्पष्ट सूचना दी है, उससे अलकोंकी ठीक पहिचान करनेमें कुछ सन्देह नहीं रहता—

कुसुमोत्खचितान्वलीभृतश्चलयन् भृंगरुचस्तवालकान् ।
करभोरु करोति मारुतस्त्वदुपावर्त्तनशंकि मे मनः ॥

—रघु० ८।५३.

अर्थात् वायु इन्दुमतीके फूलोंसे गूँथे हुए भौंराले अलकोंको, जिनमें बल पड़े हुए थे, उड़ा रही थी। अलकोंका वलीभूत विशेषण बहुत उपयुक्त है। वलीभूतका ही नाम बेष्टित केश था [**यथा—ततः केशान् समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्रानर्निदितान्**—विराट् पर्वमें सैरंध्रीके बालोंका वर्णन]। इस प्रकार के बटे हुए केशोंको छल्लेदार या घूँघरदार कहते हैं। अंग्रेजी लेखोंमें इनको ही spiral या frizzled locks कहा जाता है। गुप्तकालके कवियों ने प्रायः अलकोंके वर्णनमें **"मुक्ताजालग्रथितः"** विशेषणका प्रयोग किया जाता है [मेघदूत १।६३]। गुप्तकालीन चित्र और शिल्पकी कृतियोंमें सिरकी सजावटमें मोतियोंके बने हुए गुच्छों या गजरोंकी सजावट प्रायः देखी जाती है। लटोंको चूर्ण कुन्तल या अलकके रूपमें बटनेसे उनकी लम्बाई भी स्वभावतः कम हो जाती है। मिट्टीके खिलौनोंमें अलकोंकी यह विशेषता स्पष्ट सूचित की गई है। कालिदासने वियोगिनी यक्षिणीके केशोंको "लम्बालक" कहकर ध्वनिसे इस विशेषताकी ओर संकेत किया है—

हस्तन्यस्तं मुखमसकलं व्यक्ति लम्बालकत्वात्—मेघदूत २।२१.

अर्थात् संस्कार न होनेसे अलकोंके नीचे लटक आनेके कारण यक्ष पत्नीका मुँह पूरा दिखाई न देगा। मेघदूत २।२८ में **"शुद्धस्नातात्परुष-**

मलकं नूनमागण्डलम्बम्''—हे मेघ ! स्निग्ध पदार्थके विना स्नान करनेके कारण यक्षिणीके अलक उसके गालोंपर लटक आते होंगे—[कला और संस्कृति-पृष्ठ २४५-२४६ से]।

प्राचीन बालोंकी रचनाका ढंग स्त्रीमूर्त्तियों, पुरुष मूर्त्तियों तथा मिट्टीके खिलौने, धातु मूर्त्तियोंसे पता चलता है। इन रचनाओंमें केश विन्यास बहुत प्रकारका है; 'घुंघराले; चट्ठलेदार घूँघर, पाटीदार, मौली आदि कई प्रकार के हैं। भरतने अपने नाट्यशास्त्रमें देशोंकी भिन्नतासे केश विन्यासका उल्लेख किया है।

अवन्तीयुवतीनां तु शिरः सालककुन्तलम् ।
गौर्डानामलकप्रायं स शिखापाशवेणिकम् ॥

आभीरयुवतीनां तु द्विवेणी धरमेव च ।
शिरः परिगतं कार्यं नीलप्रायमथाम्बरम् ॥

तथा पूर्वोत्तरस्त्रीणां समुद्धतशिखण्डिकम् ।
आकेशं छादनं तासां वेषकर्मणि कीर्त्तितम् ॥ २१-६४.६७

तथा प्रोषितकान्ता या व्यसनानामभिहताश्च याः ।
वेषः स्यान्मलिनस्तासामेक वेणींधरः शिरः ॥ २१।७२

मालव देशकी स्त्रियाँ घुंघराले बालों वाली होती हैं। गौड़ देशकी स्त्रियोंके बाल शिखाके समान लम्बी वेणीके होते हैं। आभीर देशकी युवतियाँ दो चोटियाँ करती हैं। कभी-कभी इन चोटियोंको शिरके चारों ओर लपेटा भी जाता है; इससे नीले आकाशके समान शिर दीखता है। पूर्व-उत्तर देशकी स्त्रियाँ अपने बालोंको मोरकी फहराती पूँछके समान बाँधती हैं [इसीसे कालिदासने यक्षकी पत्नीके बालोंकी तुलना मोरके पूँछसे की है–**शिखिनां बर्हभारेषु केशान्—उत्तर मेघ ४१**]। दक्षिण देशकी स्त्रियाँ अपने बालोंको जल कलशके समान बाँधती हैं; अथवा माथे परसे

बालोंको पीछे ले जाकर बाँधती हैं। तामिल देशकी स्त्रियाँ पाँच चोटियाँ बनाती हैं।
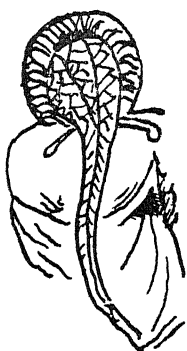
पतिके विदेश जानेपर या अन्य किसी व्यसन अथवा दुःखमें पीड़ित होनेपर स्त्रियाँ एक चोटी गूँथती थीं और मलिन वस्त्र पहनती थीं [यथा मेघदूतमें—**उत्संगे वा मलिनवसने—२६।२; गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण—३२**]।

तामिल देशमें लड़कियोंकी पाँच चोटी [पाँच शिखाएँ] रखते हैं इन पाँचोंको सिरपर परस्पर बाँध देते है। शेष बालोंको काट दिया जाता है, ये पाँचो चोटी दूसरोंसे अधिक लम्बी होती हैं। इन पाँचोंके बीचमें पर्याप्त जगह रहती है [जिस प्रकार कि बाग लगाते समय बागके पेड़ खुले-खुले कुछ दूरीपर लगाते हैं। इनके आस-पास घास नहीं होने देते, जिससे वृक्ष ठीक पनप सके]। जब कन्या बड़ी होती है तब ये चोटियाँ सारे शिरमें फैलकर सिरको ढाँप लेती हैं। तामिल देश की स्त्रियाँ बालोंको सुवासित करनेकी भी बहुत शौकीन हैं। ये अपने बालोंको इस प्रकार धोती हैं कि फूलके समान मुलायम हो जायें फिर सुगन्धित तैल लगाती हैं। दस प्रकारके कषाय वृक्ष, पाँच प्रकारके मसाले और बत्तीस वनस्पतियाँ मिलाकर पानीमें भिगोकर तैल बनाती थीं। कस्तूरी से बनी सुगन्धसे बालोंको सुवासित करनेका भी उल्लेख है।

गान्धार कलामें स्त्री और पुरुष दोनोंके केश विन्यासको दिखाया गया है। इस कलाका विकास ईसाकी प्रथम सदीमें हुआ है। सामान्यतः मनुष्य अपने लम्बे बालोंको लपेटकर शिरकी मूर्द्धा पर गाँठ देकर बाँधते थे;

[डाक्टर अग्रवालजीने इसके लिए मौलि शब्द दिया है]।[1] दूसरे रूपमें बालोंको शिरपर जूड़ेके रूपमें बाँध दिया जाता है परन्तु कुछ बाल पार्श्वमें खुले रहते थे। तीसरे रूपमें बाल जूड़ेके रूपमें चोटीपर बाँधते हैं। कुछ बालोंको [अलकोंको] ग्रीवापर पीछे लटकने दिया जाता था। भारतीय साधु शिरपर कोई वस्त्र नहीं पहिनते थे। बालोंको ही जटाजूटके रूपमें बाँध लेते हैं [पाणिनिके सूत्र 'इत्थंभूतलक्षणे' का उदाहरण **जटाभिस्तापसः** दिया है; सिद्धान्तकौमुदी]। बाँधनेसे बँचे बाल [अलक] माथेपर आ जाते हैं। कभी-कभी ये छुटे बाल माथे, ग्रीवा और पार्श्वोंमें भी रह जाते हैं। बालोंको आगेसे, पार्श्वोंसे, पीछेसे सब तरफसे एकत्रित करके सिरपर गाँठ देकर बाँधा जाता था। [जैसे आजकल सिख बाँधते हैं]। बच्चोंके शिर पर तीन या एक चोटी छोड़कर सब बाल उस्तरेसे साफ कर दिये जाते थे। कई बार बालकोंके बाल कैंचीसे काटे जाते थे।

गान्धार कलामें स्त्रियोंके बाल सिरपर घुँघराले दिखाये गये हैं अथवा सिर पर बँधे हुए हैं। एक मूर्त्तिमें बाल सिरपर बँधे हुए हैं और कुछ घुँघराले बाल पीछे लटकते हुए दिखाये हैं। बालोंको वेणीके रूपमें गूँथकर इनको पीठपर खुला भी छोड़ दिया जाता था। अथवा एक ढीली गाँठमें उलझा दिया जाता था। वेणीकी यह रचना कभी कभी मोतियोंकी लड़ीसे सजाई जाती थी। बालोंको लपेटकर उनको चारों ओरसे मोतियोंसे बने या

---

१. अग्रवालजीका कहना है कि मौलीमें जूड़ा बनाकर मालासे बाँध दिया जाता था। मौलीके भीतर भी माला गूँथी जाती थी [मुक्तागुणोन्नद्ध अन्तर्गतस्रजमौलि—रघु० १७।२३]। कुछ खिलौनोंमें दायें, बाँयें और ऊपर तीन जूड़े या त्रिमौली विन्यास पाया गया है। अजन्ताके कुछ चित्रोंमें स्त्री मस्तकोंपर बँधे हुए केशोंका एक बड़ा जूड़ा मिलता है। इसका साहित्यिक नाम धम्मिल जान पड़ता है [धम्मिलाः संयता कचाः —अमरकोष]। —कला और संस्कृति

अन्य शिरोवेष्टनसे लपेट दिया जाता था, जिससे बाल खुले नहीं रहते थे। भारतमें बने शिरोवेष्टन प्रसिद्ध थे।

कुशाण कालके स्त्री-पुरुषोंके केश-विन्यास मथुराकी मूर्त्तियोंपर जो मिले हैं उनकी संख्या बहुत अधिक है, यदि इनके साथ खिलौनोंको भी मिला दिया जाये तो ये अनगिनत हो जाते हैं। मनुष्योंके बाल प्रायः शिरोभागपर गाँठसे बँधे रहते थे। बहुत कम अवस्था होनेपर आगे माथेके बाल शिरपर बँधे हुए तथा शेष घुँघराले बाल खुले दिखाये गये हैं।

स्त्रियोंकी केश रचना बहुत प्रकारसे होती थी। कोई स्त्री एक वेणी बनाती थी, कभी-कभी बालोंको दो भागोंमें बाँटकर उनको अलग-अलग गूँथकर बालोंके किनारे दोनोंको मिला दिया जाता था। सामान्यतः बालोंको पार्श्वमें दो भागोंमें बाँटा जाता था।[1] किनारे गोल न बनाकर कभी-कभी कोणदार भी बनाये जाते थे। स्त्रियाँ बीचमें सीमन्त—माँग भी निकालती थीं। पुरुष भी बालोंको बीचसे बाँटकर-पार्श्वोंमें इस प्रकार बाँधते थे कि देखनेमें सुन्दर लगे [यथा—"द्विफालबद्धश्चिकुरराशी संस्थितम्—नैषध० १।१६]।

स्त्रियाँ बालोंको विभक्त करके बीचमें एक आभूषण—सिरबोर [चटुला-

---

१. बालोंको साफ करनेके लिए चिपचिपे-लेप लगाये जाते थे; इनमें प्रायः केलेकी राख होती थी; जिससे बाल साफ किये जाते थे; यथा—

> हरितालं पलाशस्य भस्म रम्भाजलान्वितम्।
> एतस्य लेपाल्लोमानि न रोहन्ति कदाचन॥
> सप्ताहं भावितं शंखभस्म रम्भाम्भसा ततः।
> तालेन युक्तं हरति योनिलोमानि योषिताम्॥ —अनंगरंग.

तिलक] पहिनती थीं ।[1] दक्षिणके बालोंके नमूने अमरावती और नागार्जुन कोंडामें मिले हैं। ये बहुत प्रकारके हैं। इसमें बालोंका विन्यास अपनी रुचिके अनुसार भिन्न-भिन्न दिशासे किया गया है। एक अन्यरूप बालोंको गुम्बदके आकारमें बाँधना है और पार्श्वमें दोनों तरफके बाल इस प्रकारसे रखना कि कान ढँप जाये।

बालोंको साफ रखनेके लिए कंघी और ब्रुशका उपयोग होता था। कंघीके बहुत सुन्दर नमूने मिले हैं। ये प्रायः हाथी दाँतकी होती थीं। इन पर एक पार्श्वमें स्त्री या पुरुषका आधा शरीर वक्ष तकका भाग अंकित होता था और दूसरी ओर हंस अंकित किये जाते थे। इसके सिवाय अस्थिके भी कंघे बनते थे। बालोंको उखाड़नेके लिए मोचना भी काममें लाया जाता था। [चुल्लवग्गमें मोमसे बाल उखाड़नेकी प्रथाका उल्लेख है; भगवान बुद्धने इसे मना किया था—५।३।६]।

---

१. डाक्टर अग्रवालजीने इसकी स्पष्ट जानकारी दी है, यथा—सिरबौरका प्राचीन नाम बाणभट्टके हर्षचरितसे ठीक-ठीक मालूम होता है। बाणने इसे चटुलातिलक कहा है—"सीमन्तचुम्बिनश्चटुलातिलकमणेः—हर्ष उच्छ्वास १। सीमन्त चुम्बी पदसे इसके स्थानका ठीक संकेत मिलता है। चटुलाके अग्रभागकी आकृति तिलक जैसी होनेके कारण इसे चटुलातिलक कहा जाता था। चटुलातिलकके अन्तमें एक मणि गूँथी रहती थी, जो इस प्रकारके खिलौनेमें अभी तक देखी जा सकती है। चटुलाका अग्रभाग चपल होता था अर्थात् इधर उधर हिल सकता था। इसीसे इसे चटुल कहते थे। बाणने अन्यत्र [हर्ष ३।२१] शिखण्डखण्डिका पद्मरागमणि-अर्थात् चूड़ाभरणमें [शिखण्डखण्डिकामें] ग्रथित पद्मरागका वर्णन किया है। वह भी चटुलातिलकमणिका ही नामान्तर ज्ञात होता है–कला और संस्कृतिसे।

गुप्तकाल

गुप्तकाल ; जो सातवीं सदी तक रहा, देशकी समृद्धि तथा वैभवका युग था। भारतके इतिहासमें यह समय स्वर्णकाल था। एक छोटे राज्यको समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्तने बढ़ाकर भारतवर्षके एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुँचाया था। गुप्त राजा यद्यपि शिव और विष्णुके उपासक थे, फिर भी संकीर्ण विचार वाले नहीं थे। बौद्ध और जैनधर्म भी इस समय फूले फले। संस्कृतका प्रसिद्ध कवि कालिदास इसी समय हुआ [रघुकी दिग्विजयका वर्णन ही चन्द्रगुप्त द्वितीयकी जयका वास्तविक चित्र है]। अजन्ता और बाघ गुफाकी चित्रकारी इसी समयमें हुई।

कालिदास और बाणने इस समयके लोगोंके जीवनका सच्चा चित्र उपस्थित किया है। इसमें अमीर और गरीब दोनोंका चित्रण है। दण्डीने दशरूपकमें इसी प्रकारका जीवन विस्तृत रूपमें चित्रित किया है। उस समयकी परम्पराओं, रीति-रिवाजोंकी झाँकी इनसे मिल जाती है। दैनिक जीवनकी क्रियाओंके चित्रण चित्रों द्वारा अजन्ता आदि स्थानोंमें किया गया है। दर्पणको हाथ लेकर अपना प्रसाधन करती हुई स्त्री; वाद्यकोंके साथ नृत्य करती हुई नर्तकी, इसके अङ्गोंका चालन, राजाका जलूस, योद्धाके वेशमें सिपाही आदि अजन्तामें चित्रित हैं।[1]

---

१. आविर्भूतः मदनरसानाञ्चान्योन्यतः सपरिहासाः सविश्रम्भाः ससम्भ्रमाः सेर्ष्याः सोत्प्रासः साभ्यसूयाः सविलासाः समन्मथाः सस्पृहाश्च तत्क्षणमतिरमणीयाः प्रसस्युरालापाः।

तथा हि 'त्वरितगमने! मामपि प्रतिपालय, दर्शनोन्मत्ते! गृहाणोत्तरीयम्, चपले! उन्नासय अलकलतामाननावलम्बिनीम्, मूढे! चन्द्रलेखा-

गुप्त साम्राज्यके समय मनुष्योंके विलासमय जीवनपर उनकी प्रसाधन की रुचि, केश विन्यास आदि पर प्रकाश, इस समयकी प्राप्त सामग्रीसे पूर्णतः पड़ता है।[1] इस कालके प्रसाधनके विषयमें बहुत सामग्री प्राप्त है। केशविन्यास मूर्ति, खिलौने और चित्रोंसे पता चलता है।

वैयक्तिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे प्रसाधन, सुगन्ध, फूल और अङ्गराजका उपयोग स्त्री और पुरुष दोनों करते थे। अञ्जन केवल आँखकी ज्योतिको ही नहीं बढ़ाता परन्तु इसकी शोभामें भी वृद्धि करता है [आँखें बड़ी कमल या हरिणीके समान होती हैं]। इसके लिए कादम्बरी और हर्ष चरितमें बाणने दैनिक जीवनका जो उल्लेख किया है [शूद्रक और चन्द्रापीड़का] वह दर्शनीय है। बाण द्वारा वर्णित जीवनके चित्रपर अजन्ताका चित्राङ्कन सच्चाईकी मोहरका काम करता है।

शूद्रकके स्नान और उसके उपरान्तके कार्योंका उल्लेख बाणने विस्तार से किया है [नलचम्पूमें भी राजाके स्नानका उल्लेख इसी प्रकारसे किया है; २रा अङ्क]। शूद्रकके स्नानमें—'राजाके स्नानघरमें शुभ्र चँदोवा लगा हुआ था। अनेक स्तुति पाठक चारों दिशाओंमें मण्डलाकार खड़े हुये थे। मध्य भागमें सुगन्ध जलसे भरी स्वर्ण द्रोणी थी। स्फटिकमय एक स्नानपीठ संस्थापित थी। एक भागमें अति सुगन्धित जलपूर्ण अनेक कलश रखे हुये थे। उस जलकी सुगन्धसे भ्रमरगण बैठकर कलश

सुपाहर, उत्सर्पय पापे ! कपोलदोलायितं कर्णपल्लवम्, अहृदये ! गृहाण निपतितं दन्तपत्रम्,……कादम्बरी–चन्द्रापीड़ावलोकन भावप्रदर्शन।

१. आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टन वान्तमाल्यः।
बद्धुं न संभावित एव तावत्करेण रुद्धोऽपि च केशपाशः॥
प्रसाधिकाऽलम्बितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्ट लीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान॥

—कुमार० ७।५७–५८

समूहको अन्धकारित कर रहे थे, इससे ऐसा प्रतीत होता था कि कलशका मुख नीले वस्त्रसे ढँपा हुआ है। जलद्रोणीके मध्यमें जब महाराज बैठे, तब वारविलासिनियोंने अपने हाथोंसे आमलाका चूर्ण महाराजके सिरपर मला, दूसरी वारवनिताओंने अपने आँचलसे कुचोंको ठीक प्रकार बाँधकर हाथके कड़ोंको निकाल दिया, कर्णफूलको ऊँचा करके, कानके पास आये अलकोंको पीछे हटाकर जलपूर्ण कलशसे महाराजको स्नान कराने लगीं। द्रोणीमें स्नान करके राजा निर्मल एवं स्फटिकमय स्नान पीठपर चढ़ गये [जीवानन्दनम् नाटकमें स्नान पीठको कछुएकी पीठके समान बताया है; जिससे पानी बह जाये—अंक ४]।

इसके बाद वारवनिताएँ मरकत मणिके कलशकी प्रभासे श्यामवर्ण जलसे राजाको स्नान कराने लगीं। कुछ वेश्याएँ रजतके कलशोंसे स्नान कराने लगीं; कुछ वारविलासिनियाँ मलय पर्वत स्थित नदीके समान चन्दन मिश्रित जलसे स्नान करा रही थीं, कुछ स्त्रियाँ कलशके मुखपर अंगुलियाँ रखकर उससे धारायन्त्रके समान जल गिराकर स्नान करा रही थीं। कुछ स्त्रियाँ कनकमय कलश हाथमें लेकर जलकी शीतलता मिटानेके लिए कुंकुम-जलके द्वारा राजाको स्नान कराने लगी।

स्नान क्रिया सम्पादन कर चुकनेपर महाराजने सर्पकञ्चुकके समान सूक्ष्म और शुभ्रवर्ण वस्त्रद्वय पहिनकर श्वेत एवं बृहत् रेशमी वस्त्रसे सिरको बाँधा। इसके बाद पितृ तर्पण करके, सूर्यको अर्घ्य दिया। पीछे मन्दिरमें जाकर होम किया। इसके पीछे विलेपन स्थानमें जाकर कस्तूरी, केसर; कर्पूरकी सुगन्धसे मिश्रित चन्दनका लेप सारे शरीरपर किया। माथेपर सौरभ युक्त मालती पुष्पका शेखर धारण करके वस्त्र बदले। आभूषणोंमें केवल कर्ण कुण्डल ही धारण किया, फिर भोजन किया।

भोजन करनेके पीछे आचमन करके धूमवर्त्ति पीकर और पान खाकर सभामण्डपमें चले गये। सभामण्डपकी भूमिमें नासिकाको परितृप्त करने वाले कस्तूरीसे सुगन्धित चन्दन मिश्रित जलसे छिड़काव किया गया था;

इससे वह बहुत ठण्डा हो गया था [अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिमलेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्तशिशिरमणिभूमिम्—कादम्बरी]। सभामण्डप अगुरु धूपकी गन्धसे महक रहा था [अतिबहलागुरुधूपपरिमलम्]; आस्तरण—बैठनेकी गद्दीपर बिछा वस्त्र, फूलोंकी गन्धसे सुवासित था [कुसुमामोदवासितप्रच्छदपटेन]

गुप्त कालमें वस्त्र और पात्र बहुत भी सुन्दर बनते थे—

मणिकनकसमुत्थैरावनेयैर्विचित्रैः
सजलविविधभक्तिक्षौमवस्त्रावृताङ्गैः ॥ —संग्रह चि० ६

डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवालजीने 'हर्षचरितका सांस्कृतिक अध्ययन' [पृष्ठ ४६] में इन वस्त्रोंका ठीक परिचय टिप्पणीमें दिया है, अंग्रेजीमें इनको वैट ड्रेपरी कहते हैं। [अष्टाङ्ग हृदयमें भक्तिके स्थानमें 'लेखा' पाठ है]।

राजा जब युद्धके लिए जाता था तब भी अपने प्रसाधनकी उपेक्षा नहीं करता था। हर्षचरितमें बाणने लिखा है कि राजा हर्ष युद्धमें भी अपने शरीर और धनुषपर चन्दनका लेप करता था। सिर पर श्वेत फूलोंकी माला धारण करता था और कानों पर गोरोचनका लेप लगाता था [गोरोचनाछुरितमभिनवदूर्वापल्लवम्[1]]।

---

१. सुश्रुतमें और अष्टांगसंग्रहमें उत्सादन, परीषेक, अनुलेपन, कंघी, प्रलेप; मुखलेप; अंजन आदि प्रसाधन द्रव्योंमें शत्रुओं द्वारा राजा को विष देनेके लक्षण तथा इनकी चिकित्सा बताई है, यथा—

मुखालेपे मुखं श्यावं युक्तमभ्यङ्गलक्षणैः।—सुश्रुत क० अ० २।६०.

अञ्जनप्रयुक्तेऽश्रुदूषिकोपदेहदाहरागवेदनादृष्टिविभ्रमा भवन्त्यान्ध्यं च॥

अभ्यंगप्रयुक्ते त्वगदाहस्वेदपाकस्फोटावदरणानि । अनेनोद्वर्तनोद्घर्षणपरिषेकानुलेपनभूषणयानशय्याऽऽस्तरणवस्त्रकवचरथपादुकोपानत्पादपीठाः व्याख्याताः—संग्रह-सूत्र ८।४३.

हर्षचरितमें बाणने हर्षको प्रासादमें मिली सुगन्धित वस्तुओंकी एक अच्छी तालिका दी है; [हर्षचरितका सांस्कृतिक अध्ययन—पृष्ठ १६६ से] जो इस प्रकार है—

१—सहकार लताओंके रससे भरी हुई मोटी बाँसकी नलियाँ जिनके चारों ओर कपोतिकाके लाल फीते बँधे हुए थे। सहकार एक प्रकारका सुगन्धित आम था, जिसके फलसे सहकार नामक सुगन्धित द्रव्य बनता था। बाणने स्वयं कई स्थलोंपर सहकारके योगसे एक सुगन्धित पदार्थ बनानेका उल्लेख किया है [२२, ६६, १३०]। वराहमिहिर की बृहत्संहितासे भी ज्ञात होता है कि सहकार रसके योगसे उस समय अत्यन्त श्रेष्ठ सुगन्धि तैयार की जाती थी।[1]

२. काले अगरुका तेल भी इसी प्रकारकी मोटी बाँसकी नलियोंमें भर कर और पत्तोंमें लपेटकर लाया गया था।

३. पटसनके बोरोंमें भरकर काले अगरुके ढेर लाये गये थे, जिसका रंग घुटे हुए अंजनकी तरह था।

४. गरमीमें ठण्डक पहुँचानेवाले गोशीर्ष नामक चन्दनकी राशियाँ

---

१. मुखरोगमें 'सहकारगुटिका' नामसे एक योग है, उसका उपयोग मुखको सुवासित करनेमें है; यथा—

"एलालता-लवलिकाफल-शीतकोष-कोलद्विकानि खदिरस्य कृते कषाये।
तुलांशकानि दशभागमिते निधाय प्रोद्भिन्नकेतकपुटे पुटवत् विपाच्य॥
प्रागंशतुला शशिनाथतदेकसंमस्तं पिष्ट्वा नवेन सहकाररसेन हस्तौ॥
लिप्तवा यथाभिलषितां गुटिकां विदध्यात् स्त्रीपुंसयोर्वदनसौरभवन्धुभूतम्
—आयुर्वेदसंग्रह-मुख रोग।

आमके कोमल पत्ते टहनीसे तोड़ने पर जो रस निकलता है, सम्भवतः उसको सहकार रस कहते हैं।

थी। श्री सिलवाँ लेवीके मतानुसार पूर्वी द्वीपसमूहमें तिमोर नामक द्वीप गोशीर्षक कहलाता था और वहाँका चन्दन इसी नामसे प्रसिद्ध था।

५. बरफके शिला खण्डकी तरह ठंडे सफेद और साफ़ कपूरके डले।

६. कस्तूरीके नाफे।

७. कंकोलके पके फलोंसे युक्त कक्कोल पल्लव।

८. लवंग पुष्पोंकी मंजरी।

९. जायफलके गुच्छे।[1]

बाण जब हर्षसे मिलने चला तो उसने सारे शरीरपर अंगराग लगाया; श्वेत माला धारण की, श्वेत वस्त्र पहिने, गोरोचनासे रँगी दूर्वामें गूँथे गिरीकर्णिकाके फूलोंसे कानका आभूषण बनाया, चोटीमें सरसों लगाया [**शुक्लाङ्गरागः, शुक्लमाल्यः, शुक्लवासः, रोचनाचित्रदूर्वाग्रपल्लवग्रथित-गिरिकर्णिकाकुसुमकृतकर्णपूरः शिखासक्तसिद्धार्थकः––२ रा० उच्छ्वास**]।

बाणने अपने पुस्तक वाचक का जो वर्णन किया है, वह उसके प्रसाधनका अच्छा रूप है, यथा—"वह पुंड्र देशके बने एक दुकूलपट्टके थानमेंसे तैयार किये दो श्वेत वस्त्र पहिने हुए थे। माथेपर गोरोचना और गंगनौटीका तिलक लगाये हुए था, सिरपर आँवलेके तेलकी मालिश

---

१. **सहकारलतारसानां च कृष्णागुरुतैलस्य च कुपितकपिकपोल-कपिलकापोतिकापलाशकोशीकवचिताङ्गीः स्थवीयसी वैणवीर्नाडीश्च, पट्टसूत्रप्रसेवकार्पितांश्च भिन्नाञ्जनकृष्णस्य कृष्णागुरुणो गुरुपरितामुषश्च गोशीर्षचन्दनस्य तुषारशिलाशकलशिशिरस्वच्छसितस्य च कर्पूरस्य कस्तूरिका कोशकानां च पक्कफलजूटजटिलानां च कक्कोलपल्लवानां लवंगपुष्पमञ्जरीणां जातिफलस्तवकानां च राशीन्।**

—हर्षचरित, ७ वाँ उच्छ्वास

की गई थी, चोटीमें फूल-माला गूँथी हुई थी, होठोंपर पानकी लाली थी और आँखोंमें अंजनकी बारीक रेखा।[1]

अमीर घरोंकी स्त्रियाँ या रानियाँ ही अपनेको आकर्षक बनानेके लिए प्रसाधन सामग्रीका उपयोग करती थीं ऐसी कोई बात नहीं थी, अपितु निचली श्रेणीकी स्त्रियाँ भी जैसे कि दासियाँ आदि अपनेको सजाती थीं, [**प्रियालोकफलो हि वेशः—कुमार० ७**]। हर्षकी सेवामें लगी दासियोंके माथेपर अमुरुका तिलक लगा हुआ था, जो पसीनेसे मिलकर बह रहा था, स्तनकलश वकुलमालासे परिवेष्टित थे और वे कानोंके फूलोंका पराग पड़ने से नेत्रोंको मिचमिचा रही थी।[2]

विवाहके समय कन्याका विशेष प्रसाधन किया जाता है। पुत्रवती और सौभाग्यवती स्त्रियोंने पार्वतीका प्रसाधन इसी प्रकार किया था। पहिले उसके शरीरपर तैलको लोधके चूर्णसे साफ किया, पीछेसे कालीयकका शरीरपर लेप किया, उसके बालोंको अगुरुके धुँवेसे सुवासित किया, बालोंमें महुएके फूलोंकी माला बाँधी। गालोंपर लोध्रका अङ्गराग लगाया, आँखोंमें अञ्जन लगाया, इसके पीछे माताने उसके माथेपर तिलक लगाया [कुमार० ७।६, ६, १५]।

बाणने हर्षके जन्मोत्सवका बहुत सुन्दर वर्णन किया है, सामन्तोंकी स्त्रियाँ राजकुलमें आकर भाँति-भाँतिसे नृत्य करने लगीं। उनके साथ अनेक नौकर चाकर थे; जो चौड़ी करण्डियोंमें स्नानीय चूर्णसे छिड़की हुई फूलोंकी मालायें और तश्तरियोंमें कर्पूरके श्वेत खण्ड लिए थे। कुमकुमसे सुगन्धित

---

१. पौण्ड्रे वाससीवसानः स्नानावसानसमये वन्दितया तीर्थमृदा गोरोचनया च रचिततिलकः तैलामलिकमसृणितमौलिः, अनुच्चचूड़ाचुम्बिना निविडेन कुसुमापीडकेन समुद्भासमानः सकृदुपयुक्तताम्बूलविमलाधर-कान्तिः एकशलाकाञ्जनजनितलोचनरुचिः—हर्षचरित २रा उच्छ्वास।

२. श्रमजलविलीनबहलकृष्णागुरुपंकतिलककलिपतेन कालिम्ना, विकट-बकुलावलीवराटकवेष्टितमुखैः बृहद्भिः स्तनकलशैः।

—हर्ष चरित २रा उच्छ्वास

अनेक प्रकारके मणिमय पात्र थे [तुलना कीजिये—**मणिकनकसमुत्थैराव-नेयैर्विचित्रैः–संग्रह०चि०अ० ६**]। हाथीदाँतकी छोटी मञ्जूषाओंमें चन्दनसे धवलित पूगफल और आमके तैलसे सिक्त खदिरके केसर थे। सुगन्धित द्रव्योंसे भरी हुई लाल थैलियाँ, सिन्दूरकी डिबियाँ, पिष्टातक, पटवासक चूर्णसे भरे पात्र लिये परिजन लोग चल रहे थे।[1]

विलासिता इस समय इतनी बढ़ी हुई थी कि स्त्रियाँ एक प्रकारके जीवनको पसन्द नहीं करती थीं, प्रत्येक ऋतुमें प्रत्येक समय वे परिवर्तन चाहती थीं। उनके प्रसाधनकी सामग्री, उनकी सुगन्ध, उनकी रुचि बराबर ऋतुके अनुसार बदलती थी। उदाहरणके लिए—

ग्रीष्म ऋतुमें—मालाएँ कमल और रक्त कमलकी [**स्रजः कमलोत्पन्नाः**] हाथमें कमलनालके कङ्कन [**मृणालवलयः**] शरीरपर चन्दनका लेप [**चन्दनरुषिताः**] वस्त्र सुगन्धित और हल्के [**सुरभीणि निषेवेत वासांसि सुलघूनि च**], दिनका समय धारागृहमें बिताना [**निष्पतद्यंत्रसलिले स्वप्याद् धारागृहे दिवा**] होता था। रात्रिमें खुली छतपर सुवासित फूल शय्यापर कर्पूर और चन्दनका लेप लगाकर सोया जाता था [**रात्रौ चाकाशतलके सुगन्धिकुसुमास्तृते। कर्पूरचन्दनाद्रङ्गो—संग्रह० सू० ४**]

कालिदासने इस ऋतुके लिए प्रसाधन इस प्रकार बताए हैं। स्त्रियाँ शरीरपर चन्दनका लेप किये थीं। [**सरसं च चन्दनं शुचौ प्रिये यान्ति जनस्य सेव्यताम्—ऋतु० १।२**], पैरों पर लाक्षारस लगाया गया था। [**नितान्तलाक्षारस रागरञ्जितैः—ऋतु १।५**]। स्तनोंपर चन्दन पुता हुआ था, श्वेत हार इनपर लटक रहा था [**पयोधराश्चन्दनपङ्कचर्चिता**

---

१. परिजनेन पृथुकरण्डपरिगृहीताः स्नानीयचूर्णविकीर्णकुसुमाः सुमनः-स्रजः, स्फटिकशिलाशकलशुक्लकर्पूरखण्डपूरिताःपात्रीः कुंकुमाधिवासभाञ्जि भाजनानि च मणिमयानि, सहकारतैलतिम्यत्तनुखदिरकेसरजालजटिलानि।
—हर्षचरित ४ उ०

स्तुषारगौरार्पितहारशेखराः—१।६]। स्त्री और पुरुष अपनी प्यास शीतल और सुगन्धित जलसे बुझाते थे [पानीको सुवासित करनेके लिए वस्तुयें—नागचम्पकोत्पलपाटला पुष्पप्रभृतिश्चाधिवासनम्—सुश्रुत सूत्र० अ० ४५।१२ पानीको ठण्ढा करनेके उपाय—प्रवातस्थापनम्, उदक-प्रक्षेपणं, यष्टिकाभ्रमणं, व्यजनं, वस्त्रोद्धरणं, बालुकाप्रक्षेपणं, शिक्या-वलम्बनं चेति—सू० अ० ४५।१८]।

वर्षा ऋतुमें—उद्घर्षण; उद्वर्त्तन, स्नान, धूप, सुगन्ध, अगरुका उपयोग करना चाहिए [प्रघर्षोद्वर्त्तनस्नानधूपगन्धागुरुप्रियः—संग्रह—सू० अ० ४।४८], नाना प्रकारकी मालायें और वस्त्रोंका धारण करना उत्तम हैं [चित्रस्रग्वस्त्रविभूषितः—संग्रह—सू० अ० ४।४८]। इन दिनों नई केसर, केतकी और कदम्बके नये फूलोंकी मालायें गूंथकर स्त्रियाँ अपने जूड़ोंमें बाँधती हैं। कंकुमके फूलोंके मनचाहे ढंगसे बनाए हुए कर्णफूल अपने कानोंमें पहनती हैं। स्त्रिया अँगोंपर अगर मिला चन्दनका लेप करके बालोंमें महकते हुए फूलोंके गुच्छोंको खोंसकर बादलोंकी गड़-गड़ाहट सुनकर अपने शय्या घरोंमें पहुँच जाती हैं।[1] वर्षाकाल प्रेमिकाके लिए जूहीकी नई-नई कलियाँ तथा मालती और मौलसरीके फूलोंसे माला गूँथ रहा है; नये खिले कदम्बके फूलोंसे कर्णफूल बना रहा है।[2]

शरद् ऋतुमें—हल्का, साफ़ वस्त्र एवं माला धारण करे, ठण्डी खशका लेप लगाये [लघुशुद्धाम्बरस्रग्वी शीतोशीरविलेपनः—संग्रह—सू०

१. कालागुरुप्रचुरचन्दनचर्चिताङ्ग्यः
पुष्पावतंससुरभीकृतकेशपाशाः। —ऋतु० २।२२

२. शिरसि वकुलमालां मालतीभिः समेतां
विकसितनवपुष्पैः यूथिकाकुड्मलैश्च।
विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां
रचयति जलदौघः कान्तवत्काल एषः॥ —ऋतु० २।२५।

अ० ५।५८]। कमलोंसे भरे तालोंकी कमलिनियोंको हिलाता हुआ शीतल वायु युवकोंके मनको झकझोर डालता है। इस ऋतुमें मालती खिलती है; नई मालतीके सुन्दर फूलोंने दान्तोंकी चमकसे खिल उठनेवाली स्त्रियोंकी मुसकराहटको भी नीचा दिखा दिया है। स्त्रियाँ अपनी काली, घनी घुँघराली लटोंमें नये मालतीके फूल गूँथ रही हैं और कानोंमें नीले कमलके कुण्डल पहन रही हैं। आजकल स्त्रियाँ स्तनोंपर मोतीका हार और चन्दनका लेप चुपड़ रही हैं।[1]

हेमन्त ऋतुमें—शरीरपर केसर या अगुरुका लेप करे; हल्के परन्तु गरम वस्त्रोंको धूप और धूमसे सुवासित करके धारण करे [**कुंकुमेनानुदिग्धाङ्गोऽगुरुणा गुरुणाऽपि वा। लघूष्णैः प्रावृतःस्वप्यात्काले धूपाधिवासितः—संग्रहः सू० अ० ४।१६**]। इस ऋतुमें स्त्रियाँ शरीरपर चन्दन लगाती हैं; अपने मुखपर कमल जैसे नानाप्रकारके बेलबूटे बनाती हैं; काला अगुरुका धूप देकर अपने बालोंको सुवासित करती हैं।[2]

शिशिर ऋतुमें—जब शीत अधिक होता है, उस समय स्त्रियाँ—फूलोंका आसव पीकर कमल जैसे अपने मुखको सुवासित करती हैं; पान खाकर, इत्र-फुलेल लगाकर और मालायें पहिनकर, अगरुकी गन्धसे मह-

---

१. **केशान्नितान्तघननीलविकुञ्चिताग्रा—**
नापूरयन्ति वनिता नवमालतीभिः।
कर्णेषु च प्रवरकाञ्चनकुण्डलेषु
नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति॥ —ऋतु० ३।१९।

२. **गात्राणि कालेयकचर्चितानि सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि।**
शिरांसि कालागुरुधूपितानि कुर्वन्ति नार्यः सुरतोत्सवाय॥
—ऋतु० ४।५।

कते अपने शय्या घरमें बड़े चावसे जा रही हैं।[1] स्त्रियाँ स्तनोंपर केसरका लेप करती थीं। [पयोधरैः कुंकुमरागपिञ्जरैः—ऋतु० ५।६]।

वसन्त ऋतुमें—स्नान करके शरीरको सजाकर माला पहिनकर चन्दन और अगरुका लेप करना चाहिए [स्नातः स्वलंकृतः स्रग्वी चन्दनागुरुरूषितः—संग्रह० सूत्र० अ० ४।२६]। स्त्रियाँ स्तनोंपर केसरमें रँगी महीन कपड़ेकी चोली पहन रही हैं; नितम्बों पर कुसुम्भके रंगकी रेशमी साड़ी पहिनी हैं। कानोंमें कर्णिकारका नया फूल; चञ्चल और नीले अलकोंमें अशोक तथा नवमल्लिकाकी खिली हुई कलियाँ लगी हुई हैं। स्तनोंपर श्वेत चन्दनका लेप किया हुआ है।[2] सुनहरे कमलके समान सुहावने और बेलबूटे चीते हुए स्त्रियोंके मुखपर फैली हुई पसीनेकी बूँदे ऐसी मालूम पड़ती हैं मानों अनेक रत्नोंके बीच मोती जड़ दिये गये हों।[3]

इन दिनों स्त्रियाँ अपने मोटे वस्त्र उतार कर महावरसे रंगे हुए और काला अगुरुके धुएँसे सुगन्धित महीन वस्त्र पहनती हैं। स्त्रियाँ कालीयक और

---

१. गृहीतताम्बूलविलेपनस्रजः पुष्पासवामोदितवक्त्रपंकजाः।
प्रकामकालागुरुधूपवासितं विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः॥
—ऋ० ५।५

२. कर्णेषु योग्यं नवकर्णिकारं चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम्।
पुष्पं च फुल्लं नवमल्लिकायाः प्रयान्ति कान्तिं प्रमदाजनानाम्॥
स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्रा भुजेषु सङ्गं वलयाङ्गदानि॥

३. सपत्रलेखेषु विलासिनीनां वक्त्रेषु हेमाम्बुरुहोपमेषु।
रत्नान्तरे मौक्तिकसंगरम्यः स्वेदागमो विस्तरतामुपैति॥
—ऋतु० ६।६।८

केसरके घोलमें कस्तूरी मिला कर अपने गोरे-गोरे स्तनों पर चन्दनका लेप कर रही हैं।[1]

गुप्त कालके वस्त्र महीन और बेल-बूटोंसे शोभित होते थे। इस समय के पात्र भी सुन्दर और फूल-पत्तियोंसे चित्रित होते थे।

मणिकनकसमुत्थैरावनेयैर्विचित्रैः
सजलविविधभक्तिक्षौमवस्त्रावृताङ्गैः ॥ —संग्रह चि० ६

हर्षका अधरवास वासुकीके निर्मोक या केंचुलकी तरह अत्यन्त महीन नितम्बोंसे सटा हुआ श्वेत निर्मोककी तरह था [हर्षचरितका अध्ययन—पृष्ठ ४६]; बाणने शूद्रकके वस्त्रोंके लिए भी यही लिखा है [**विषधर-निर्मोकपरलघुनी धवले परिधाय धौतवाससी—कादम्बरी**]। श्री हजारी-प्रसादजी द्विवेदीकी मान्यता है कि अधरवस्त्र प्रतिदिन धुलता था, इसीसे इसे धौत कहते थे; यही फिर धौतीमें बदला।

बाणने राजा तारापीड़के भोग-विलासका वर्णन करते हुए उसका सुवर्ण पिचकारियोंसे खेलना लिखा है; यथा—कभी-कभी राजा सुवर्णकी पिचकारियोंसे प्रिय युवतियोंके साथ बहुत देर तक क्रीड़ा करता था, उस समय किसी युवतीके हाथके आकर्षणमें पिचकारीसे निःसृत कामदेवके सुवर्णमय बाणोंकी पंक्तिके समान केसरिया जलकी धाराओंसे राजाका शरीर पीला हो जाता था; किसी युवतीकी पिचकारीसे निकली लाक्षारसकी जलकी धाराके प्रवाहसे राजाका वस्त्र लाल बन जाता था; किसी युवतीकी

---

१. प्रियंगुकालीयककुंकुमाक्तं स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः।
आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभिः मदालसाभिः मृगनाभियुक्तम् ॥
गुरूणि वासांसि विहाय तूर्णं तनूनि लाक्षारसरञ्जितानि।
सुगन्धिकालागुरुधूपितानि धत्ते जनः काममदालसांगः ॥
—ऋतु० ६।१४-१५

सोनेकी पिचकारीसे निकली कस्तूरीयुक्त जलकी बूँदोंसे राजाके शरीरमें लाल चन्दनका लेप चितकबरा हो जाता था [कादम्बरी तारापीड़ भोग-विलास वर्णन][1]

स्नान—भारतीय प्रसाधनमें स्नान एक महत्त्व अंग है। स्नानके लिए पृथक् स्थान [स्नानभूमि] होता था। गरमियोंमें धारास्नान होता था [निष्पतद्यन्त्रसलिले स्वप्याद् धारागृहे दिवा—संग्रह० सूत्र अ० ४।३८] स्नानके लिए पानीको सुगन्धित करनेके नुस्खे वराहमिहरने भी दिये हैं; सुश्रुतमें पानीको सुवासित करनेके लिए नागचम्पाका उपयोग बताया है [सूत्र० अ० ४५]।

स्नानके बाद स्त्री और पुरुष दोनों शरीर पर विलेपन लगाते थे। स्त्रियाँ मुखपर विशेष रूपसे प्रसाधन करती थीं। ओठों पर लाख का लाल रंग लगाती थीं। चेहरे पर और कपोलों पर सुन्दर-सुन्दर चित्र बनाती थीं; माथे पर तिलक लगाती थीं, आँखोंमें अञ्जन या काजल लगाती थीं। चित्र बनानेके लिए चन्दन या अगरुका लेप अथवा कस्तूरीका प्रयोग प्रायः होता था। पहिले शरीर पर चन्दनका सफेद लेप कर लिया जाता था, फिर अगरु या कस्तूरीसे इस पर काला

---

१. श्रीहर्षने रत्नावली नाटिकामें भी इसी प्रकारके आनन्दोत्सवका उल्लेख किया है—

> कीर्णै पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुंकुमक्षोदगौरैः
> हेमालंकारभाभिर्भरनमितशिरः शेखरैः कैङ्किरातैः।
> एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिताशेषवित्तेशकोषा
> कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति॥

—अंक १

> घेतूण चुण्णमुट्ठिं हरिसूससि आएं वेपमाणाए।
> भिसिणेमेति पिअ अमं हत्थे गंधोदअं जाअं॥

—गाथासप्तशती

नमूना बनाया जाता था। कई बार नमूना गोरोचना या श्वेत चन्दनसे बनाते थे। नमूना बनानेके लिए कृष्ण अगुरु, केसर और सिन्दूरका उपयोग होता था। ये नमूने बाहु, शंखप्रदेश [कनपटी], स्तन और कपोलोंपर भी बनाये जाते थे। 'मकरिका'–शब्द प्रायः नमूनेके लिए आता है [**घर्माम्भः कण लुप्यमानमकरीपत्रांकुरालंक्रिया—जीवानन्द-नम् अंक ४।५**]। हर्षचरितमें मकरिका-नमूना बनानेका उल्लेख है [**पूर्णमण्डनपत्रभंगमकरिका**]। अमरकोशमें मुख और स्तनोंपर नमूने बनानेके दो भेद बताये हैं; एक—पत्रलेखा और दूसरा—पत्रांगुली। पत्रलेखासे अभिप्राय सम्भवतः कपोल या स्तनोंपर ब्रशकी सहायतासे फूल-पत्ते बनानेसे है। पत्रांगुलीसे अभिप्राय अँगुली या चित्रशलाकासे चित्र बनानेका है [**पत्रांगुलीचार्धनिमीलताक्षे वक्त्रेऽस्य तामेव निर्दुधुर्वा—सौ० न० ४।१६**]। माथेपर चित्र बनानेके चार नमूने थे—तमालपत्र, तिलक, चित्रक और वैशेषिक। तमालपत्रसे अभिप्राय सम्भवतः तमालपत्रके रससे नमूना बनाना अथवा तमालपत्रमें नमूना काटकर उसको माथेपर चिपका देना था। पत्तेमें नमूना काटकर लगानेकी प्रथा राजपूताना और मथुरामें आज भी है, सुन्दरताका अर्थ इससे बहुत अंशोंमें पूरा हो जाता है। तिलकसे अभिप्राय चन्दनके लेपसे गोल बिन्दी बनाना है। यह बिन्दी कस्तूरी या सिन्दूरसे भी बनाई जाती थी। चित्रकसे अभिप्राय सम्भवतः एकसे अधिक रंगों द्वारा माथेपर चित्र बनाना है। वैशेषिकसे अभिप्राय—सामान्य प्रसाधनसे है, जो कि माथेपर विशेष रूपमें किया जाता था। गोरोचन और अगरुसे भी नमूने बनाये जाते थे। इन चित्रोंमें लता-बेलके नमूने अधिक पसन्द किये जाते थे। इसके सिवाय हरिण आदिका चित्र भी पसन्द किया जाता था[१]। पुण्डरीकके शरीरको आकाशमें ले जानेवाले

१. **किमिति च हरिण इव हरिणलांछनेन लिखितः कृष्णागुरुपयोधरभारि ?**
स्रवदश्रुजललवधौतकुंकुमपत्रलतं कपोलयुगलम् ।

—कादम्बरी-विलासवती दुःख

पुरुषका कंधा सुन्दरियोंके स्तनोंकी कुंकुम पत्रलतासे चिह्नित था [कामिनी-कुचकुंकुमपत्रलतालाञ्छितांसदेशः—कादम्बरी] । स्तनोंपर चन्दनका लेप होता था। पुण्डरीकके शरीरपर चन्दनका लेप था [चन्दनरस-चर्चाङ्ग रागवशेनार्द्रेण—कादम्बरी]। चन्दनकी मोटी रेखा कभी-कभी भुजाओंपर बनाई जाती थी; कभी स्त्रियोंके कपोलोंपर आकर्षक चित्र बनाये जाते थे।

स्त्रियाँ प्रायः माथेपर विशेष चित्र चन्दनके लेपसे या अन्य वस्तुओंसे बनाती थीं, यथा—कादम्बरीमें—

१. चन्दनविटपिनां मृदूनि किसलयानि निष्पीड्य तेन स्वभाव-सुरभिणा तुषारशिशिरेण रसेन ललाटिकामकल्पयम्; आचरणादङ्गचर्चा-ञ्चारयम् ।। पुण्डरीकाधिज्वर शमन व्यापार ।

२. किंचिदाश्यानचन्दनललाटिकालग्नधूसराकुलालकेन ।

—महाश्वेता अभिसार

३. मदनचन्द्रकलयेव चन्दनलेखिकया रचितललाटिकाम् ।

—कपिञ्जलद्वारा मित्रोपरत

४. धारयस्यनुपरचितगोरोचनाविन्दुतिलकामसंस्कृतालकिनीमलीक-लेखाम्—विलासवती का दुःख ।

सारे शरीरपर चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कर्पूर, केशरका लेप किया जाता था।[१] सुगन्धके लिए कर्पूर और केशरका प्रयोग होता था। सर्वतो-भद्र गन्धमें नख, तगर, तुरुष्क इनको समान भागमें मिलाकर बादमें कर्पूर और कस्तूरी मिलाते थे [बृहत् संहिता ७६।२६]। यक्ष कर्दम नामसे दूसरी

२. मृषा विषादाभिनयादयं क्वचिज्जुगोप निःश्वासततिं वियोगजाम् ।
विलेपनस्याधिक चन्द्रभागता विभावनाच्चापललाप पाण्डुताम् ।।

—नैषध १।५१

सुगन्धका उल्लेख है; इसमें कर्पूर, अगरु, कस्तूरी और कक्कोल होता था। इन सुगन्धके सिवाय तेल और प्रलेपोंके रूपमें भी सुगन्ध होती थी। गात्रानुलेपनी सुगन्ध शरीर पर लेप की जाती थी, वर्त्ति—सुगन्ध बत्तीके समान बनाकर रखी जाती थी यह भी सुगन्धित वस्तुओंसे बनती थी [यथा कादम्बरीमें परिपीत धूमवर्ति। चरकमें धूमवर्ति बनानेका जो योग है उसमें भी सुगन्धित द्रव्य हैं सू० अ० ५।२०–३०, १—**कर्पूरागुरुचन्दन मुस्ता पूति प्रियंगुबालं च। मांसी चेति नृपाणां योग्या रतिनाथ धूमवर्तिरयम्॥ नागर सर्वस्व. २.—परिपीतधूमवर्त्ति स्थास्यसि रमणान्तिके सुतनु—कुट्टनीमतम्**]। वर्णक सुगन्धित लेप या विलेपन अथवा सुगन्धित तैल या घृत जो शरीरपर लगाया जाये।[1] बहुतसे चूर्ण शरीरको सुगन्धित करनेके लिए भिन्न-भिन्न वस्तुओंसे बनाये जाते थे [**अभ्यर्णपादपस्फुटितवल्कलविवरशीर्णेन च करसंचूर्णितेनकर्पूर रेणुना स्वेदप्रतीकारमकरवम्—कादम्बरी पुण्डरीकाधिज्वरशमन**]। लोध का चूर्ण और कमीलेका चूर्ण प्रायः इसके लिए प्रयोगमें आता था [**नीता लोध्रं प्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः—मेघदूत उत्तर मेघ २**]। मालाको धारण करके अपनेको सुवासित करना या वस्त्रों पर सुगन्ध लगाना 'अधिवासन' कहाता है।

---

१. आयुर्वेदमें वर्णकघृत नामसे एक योग है, यह घृत वर्ण निखारनेके लिए है, यथा—

मधूकं चन्दनं कंगु सर्षपं पद्मकं तथा।
कालेयकं हरिद्रां च लोध्रमेभिश्च कल्कितैः॥
विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत् पक्वं वस्त्रगालितम्।
पादांशं कुंकुमं सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत्॥
तत् सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत् ततः।
एतद्वर्णकं नाम घृतं वर्णप्रसादनम्॥

—आयुर्वेद संग्रह

बालोंको धोनेके लिए वराहमिहिरने बृहत्संहितामें [७५।५] एक योग दिया है, जिसमें दालचीनी, नलिका, स्पृक्का, तगर, वाल, कुष्टरेणु इनके साथ केसर मिलाकर शिरके बालोंको धोना उत्तम कहा है।

तैल—बालोंमें तथा शरीरपर सुगन्धित तैल लगाया जाता था। अग्निपुराणोंमें तैलोंको सुगन्धित करनेके लिए कई योग दिए हैं। यथा—तैलमें दालचीनी, मुरा, नलद और बालक मिलानेसे केशरकी गन्ध आती है। तगर और ध्यामक मिलानेसे जाती पुष्प चमेलीके फूलोंकी गन्ध आती है, मंजीठ, तगर, चोरक, दालचीनी, व्याघ्रनख, नख और गन्ध पत्र [सुगन्धवाला] मिलानेसे गन्ध तैल बनता है।[1]

फुलेल बनाने की यह रीति है—तिलोंको पुष्पोंसे सुवासित करके कोल्हू में पीड़ कर तैल निकाल लेते हैं।

यक्षकी पत्नीने पतिके वियोगमें बालोंमें तैल लगाना छोड़ दिया था, इसलिए इसके बाल कठोर हो गये थे [**शुद्धस्नानात् परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्—उत्तरमेघ ३३**]। कवियों तथा चित्रकारोंने [अजन्ताके चित्रोंमें] प्रसाधन कार्यमें सुगन्धित फूलोंका उपयोग काफी किया है। फूलों

---

१. **त्वङ्मुरा नलदैस्तुल्यैर्वालकार्द्धसमायुतैः ।
स्नानमुत्पलगन्धि स्यात् स तैलं कुंकुमायते ॥
जातीपुष्पसुगन्धि स्यात् तगरार्द्धेन योजितम् ।
सद्ध्यामकं स्याद् तुल्यगन्धिमनोहरम् ॥
मंजिष्ठातगरं चोरं त्वचं व्याघ्रनखं नखम् ।
गन्धपत्रञ्च विन्यस्य गन्धतैलं भवेच्छुभम् ॥
तैलं निपीड़ितं राम ! तिलैः पुष्पाधिवासितैः ।
वासनात् पुष्पसदृशं गन्धेन तु भवेद् ध्रुवम् ॥
—अग्निपुराण २२३।३०-३३**

की वेणी तथा मालाका उल्लेख बालोंके लिए और छाती पर धारण करनेमें किया है। दक्षिण एवं ब्रह्माकी स्त्रियाँ आजतक बालोंमें फूलोंका उपयोग करती हैं। मेघदूतमें मन्दार, नया कुरबक, कुन्दका फूल बालोंमें लगानेका उल्लेख है [उत्तरमेघ २।११]; शिरीषका और कमलका फूल कानोंमें पहना जाता था [**च्युतकेशरदूषितेक्षणान्यवतंसोत्पलताडनानि वा—कुमार० ४।८**]। माला गलेमें धारण करते थे। बकुलकी मालाकी बालोंमें बाँधते थे [**शिरसि बकुलमालां मालतीभिः समेताम्—ऋतु० २।२५**]। कभी-कभी मालतीके फूलोंकी वेणी जूड़ेपर बाँधी जाती थी। बालोंमें जो माला धारण की जाती थी उसे 'गर्भक' कहते हैं। फूल जो पीछे लटकते रहते हैं, उनको 'प्रभ्रष्टक' और जो सामने आते हैं, उनको 'लम्बक' कहते हैं। माथेपर गिरने वाले बाल प्रलम्ब और ऋजुलम्ब कहलाते हैं [**हस्तन्यस्तं मुखमसकलं व्यक्ति लम्बालकत्वात्—मेघदूत–उत्तर मेघ २४**] जो माला गलेमें यज्ञोपवीतकी भाँति पहिनी जाती है उसे वैकक्षिका कहते हैं। जो बालोंमें चोटीके स्थानपर बाँध देते हैं, उसे आपीड़ और शेखरक कहते हैं।[1] कादम्बरीमें बाणने लिखा है कि शूद्रकने मालतीके फूलोंकी वेणी बाँधी हुई थी। [**आमोदितमालतीकुसुमशेखरम्—कादम्बरी**]। फूलोंका जूड़ा बनाया जाता था। कुमारगुप्त 'आम्रलतिका (आम्रातक–अम्बाड़ा) के फूलोंका जूड़ा पहिनता था। पर्वतीय लोग श्यामलता (काला सारिवा) की बेलसे बालोंको बाँधते थे। कानोंको फूल और पत्तोंसे सजाया जाता था। इसके लिए शिरीषके फूल, मालती और अशोककी कलियाँ काममें आती थीं। शैवालका भी उपयोग होता था।

---

१. **माल्यं मालास्रजौ मूर्ध्नि केशमध्ये तु गर्भकः।**
प्रभ्रष्टकं शिखालम्बि पुरोन्यस्तं च लम्बकम्॥

प्रालम्बमृजुलम्बिस्यात्कण्ठात् वैकक्षिकं तु तत्।
यत्तिर्यक्क्षिप्तमुरसि शिखास्वापीडशेखरौ॥

बालों, वस्त्रों और घरोंमें सुगन्ध पैदा करनेके लिए सुगन्धित वस्तुओंसे धुँवा दिया जाता था। बालोंको अगरु तथा दूसरी सुगन्धित वस्तुओंसे सुवासित करनेका उल्लेख कवियोंने भी किया है। [**जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपैः—मेघदूत—पूर्वमेघ० ३६**]; ऋतुसंहारमें भी इसका उल्लेख आया है। बृहत्संहितामें सुगन्धके बहुतसे योग दिये हैं; (७६—८,६)।

पानका उपयोग मुखको सुवासित, पाचनके लिए, ओठोंको रंगनेके लिए होता था।[1] पानका पिटारा ले जानेवाली परिचारिकाका उल्लेख कादम्बरीमें बाणने किया है। पानकी पिटारीके साथ-साथ ये प्रसाधन की सामग्री ले जाती थी [**गृहीतविविधकुसुमताम्बूलाङ्गरागपटवास-चूर्णया तरलिकयानुगम्यमाना—कादम्बरी**]। बाणके सेवकोंमें ताम्बूल-दायक और सैरन्ध्री (प्रसाधिका) भी थी। ताम्बूलवाहक पानके साथ-साथ वसन (वस्त्र); आभूषण, फूल, पटवास, तालवृन्त (पंखा), अंग-राग, भृङ्गार (जलपात्र—गंगासागर) भी साथमें रखकर राजाकी सेवा करते थे।

अमरकोशमें बहुत-सी सुगन्धित वस्तुएँ गिनायी गयी हैं:—केशरका उत्पत्ति स्थान काश्मीर और वाह्लीक था। इसीसे केशरके नाम काश्मीरज और वाह्लीक है। वाह्लीक आधुनिक बल्ख है; रघुकी सेनाके घोड़ोंने सिन्धु नदीके किनारे पहुँचकर उसकी रेतमें लोटकर अपनी थकान मिटाई। लोटने से उनके शरीरमें केशर लग गया था, इसे झाड़कर उन्होंने साफ़ कर दिया था।[2]

---

१. **एलालवंगकक्कोल-जातीफलनिशाकराः।**
जातीपत्रिकया सार्द्धं स्वतंत्रा मुखवासकाः॥

—**अग्निपुराण—२२३।३४**

२. **विनीताध्वश्रमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनैः।**
दुधुवुर्वाजिनः स्कन्धाँल्लग्नकुङ्कुमकेसरान्॥

—**रघुवंश० ४।६७**

सुश्रुतमें सुगन्ध एवं वर्णप्रसाधनके लिए एलादिगण दिया है; जिसमें—इलायची, तगर, कुष्ठ, जटामांसी, ध्यामक; दालचीनी, तेजपत्र, नागपुष्प, प्रियंगु, हरेणु, व्याघ्रनख, शुक्ति, चण्डा, स्थौणेयक; श्रीवेष्टक, चोच (पतले छिलकेकी दालचीनी); चोरक, वालक, गुग्गुल, सर्जरस तुरुष्क, कुन्दरु, अगुरु, स्पृक्का, उशीर, देवदारु; कुंकुम, पुन्नागकेशर (नागचम्पा), नागकेशर—इतनी औषधियाँ हैं। ये वस्तुएँ वात, कफ और विषनाशक, वर्णको उज्ज्वल करनेवाली तथा कण्डू, पिड़का तथा कोढ़को दूर करनेवाली हैं [सूत्र० अ० ३८ । २४-२५]। सर्वगन्धोदक शब्दसे इसी गणका ग्रहण किया जाता है, क्योंकि इस गणमें सब सुगन्धित वस्तुएँ हैं। बृहत्संहितामें प्रायः इन्हीं वस्तुओंका संग्रह है परन्तु इससे कम।

प्रसाधनमें कस्तूरी भी मुख्य थी। चन्दन शीत लेप तथा शुभ्र भक्ति-कर्ममें उपयोगी था, कस्तूरीका लेप गरम और काले रंगके चित्रकर्मके काममें आता था। कस्तूरीका मुख्य आयात हिमालयसे होता था, यथा—

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्याः एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारं।

—मेघदूत; पूर्वमेघ० ५६

जिस हिमालयकी शिलाएँ कस्तूरी हिरणोंके बैठनेसे सदा महकती हैं; गंगाका उत्पत्ति-स्थान है।[1] कस्तूरीका लेप और माला दोनोंका उपयोग होता था। कस्तूरीके साथ कर्पूरका भी उपयोग होता था; यह इसकी उष्णिमाको कुछ कम करनेके लिए मिलाया जाता था। कस्तूरीके साथ श्वेत चन्दनका भी लेपमिला कर करते थे। यह सब मिश्रण चित्रकर्म, भक्ति, पत्रच्छेद आदि चित्रकार्यके उपयोगमें आते थे।

---

१. विशश्रमुर्न मेरूणां छायास्वध्यास्य सैनिकाः।
दृषदो वासितोत्संगा निषण्ण मृगनाभिभिः॥

—रघु० ४।७५

हिमालयकी भाँति आसाम भी प्राचीन कालसे सुगन्धित वस्तुएँ अन्य देशोंको देता आ रहा है। हर्षके लिए जो भेंट आसामके राजाने अपने दूत हंसवेगके हाथ भेजी थी उसमें सहकारलताओंके रससे भरी हुई मोटी बाँसकी नलियाँ; काले अगरुके तेलसे भरी नलियाँ; काला अगरु; गोशीर्षक चन्दन; सफेद कपूर; कस्तूरीके नाफे; कक्कोल फलोंसे युक्त पल्लव, लंवग पुष्पोंकी मञ्जरी, जायफलके गुच्छे थे। ये सब सुगन्ध, सुवास उस समय वहाँ प्रचुर मात्रामें उत्तम कोटिका होता था। कालिदासके अनुसार आसाम के अगरु वृक्षोंसे रघुके हाथियोंको बाँधनेके स्तम्भका काम लिया था [**तद् गजालानतां प्राप्तैः सह कालागुरुद्रुमैः।—रघु० ४।८१**]।

प्रसाधनके कुछ शब्द विशेष अर्थको लेकर हैं। माथे पर आये स्वाभाविक टेढ़े बालोंको अलकभंग, केशविन्यास या चित्र विचित्र शैलीमें की रचनाको कबरी या केशवेश; बँधे हुए [संयत] बालोंके जूड़ेको धम्मिल और जूड़ा, सिरके ऊपर बालोंको समेट कर बाँधी चोटीको शिखा, चूड़ा, केशपाशी, एवं इसी शैलीमें बँधी साधुओंकी चोटीको जटा या सटा कहते हैं। जिनके पति विदेश गये होते हैं; ऐसी प्रोषितभर्तृका नायिकाओंके विरह-कालको सूचित करनेवाले केश-विन्यासको वेणी या प्रवेणी कहते थे। स्नान द्वारा धोये हुए भमरे बालोंको शीर्षण्य और शिरस्य कहा है।

बालोंके समूहको स्पष्ट करनेके लिए पाश, पक्ष, हस्त, जाल, जालक, भार शब्द आते हैं। सुन्दर केशवाली नायिकाको कालिदासने सुकेशी कहा है [**गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी—कुमार० ५।६०**]; कुटिल केशोंवाली नायिकाको अरालकेशी कहा है [**रोमाञ्चलक्ष्येण स गात्रयष्टिं भित्वा निराक्रमदरालकेश्याः—रघु० ६।८१**]। प्राचीन कालमें केश-विन्यासके दो ही प्रकार सामान्य रूपसे ज्ञात थे—सुन्दर केश और अराल केश। सुन्दर केश घुँघराले न होकर लम्बे होते थे और अराल केश लम्बे न होकर घुँघराले होते थे।

बाल सँवारनेसे पूर्व नायिका बालोंको धूपसे सुवासित करती थी। धूपसे सुवासित होनेके साथ-साथ गीले बाल धुँएके समान ही घुँघराले-भमरे बन जाते हैं। कालिदासने ऐसे धूपित सूखे केशपाशको आश्यान कहा है [**तं धूपाश्यानकेशान्तं तोयनिर्णिक्तपाणयः—रघु० १।२२, आश्यान = शोषित**]। स्नानके पीछे गीले बालोंको धूपसे सुवासित करनेकी प्रक्रियाको धूपवास भी कहते हैं [**जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपैः—मेघदूत १।३२**]। कपोलों तक मुख पर लटकनेवाले केशपाशको कविने आगण्ड लम्ब कहा है। बालोंके उद्‌बन्ध या विगलितबन्ध होकर उच्छ्वसित हो जाने के अनेक कारण हैं। कभी रतिकालमें केशपाश पूर्णतः विगलित हो जाता है [**रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः—रघु० ६।६७**]। पवनवेगसे खुले हुए बाल कभी-कभी आँखोंके सामने आते हैं, इनको कालिदासने उद्‌गृहीत कहा है [**त्वामारूढं पवनपदवीमुद्‌गृहीतालकान्ताः—मेघ० १।८**]; बालोंके खुल जाने पर बालोंको एक हाथसे थामे हुए—पर्याकुल केशपाश का उल्लेख शाकुन्तलमें है [**बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिता पर्याकुला—शाकु० १।२७**]।

केश बिन्यास—स्त्री और पुरुष दोनों काले; लम्बे, कोमल बालोंको पसन्द करते थे [**अयं च ते बहुलपक्षप्रदोप इव चन्द्रलेखाविरहितः करोति मे दृष्टिखेदम् अतिबहुलतिमिरपटलान्धकारः कुसुमरहितः केशपाशः—कादम्बरी**]। बालोंको लम्बा, घना काला बनानेके लिए इन पर काले अगरुका लेप, तथा अगरुका धूप दिया जाता था। केशोंके लिए कई नाम आते हैं, यथा—चिकुर, कुन्तल, कच, केश, शिरोरुह, अलक आदि। घुँघराले अथवा छल्ले पड़े बाल क्रमशः अलक अथवा चूर्ण कुन्तल कहे जाते थे। गुप्तकालमें चूर्ण कुन्तलवाले बाल अधिक पसन्द किये जाते थे। जो बाल माथेपर आते थे उनके लिए 'भ्रमरिका' शब्द था। पार्श्वोंमें लटकनेवाले बालोंको 'शिखण्डक' कहते थे। भारतीय हिन्दू स्त्रियाँ जिस प्रकारसे बालोंको एकत्रित करके जूड़ा बाँधती हैं, उसे 'कवरी' कहते

है। यदि जूड़ा मोतीकी मालासे बँधा हो तो धम्मिल कहा जाता है [मुक्ता ज्ञालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्—मेघदूत पूर्वमेघ ६५]। शिखा–जिसे हिन्दू धारण करते हैं, इसके कुड़ और केशपाशी ये दो नाम और हैं। बाल जो कि गूँथे गये हैं उनको प्रवेणी कहते हैं। लम्बे, साफ खुले बाल शीर्षण्य या शीर्ष्य कहाते हैं।[1] विष्णुधर्मोत्तर पुराणमें बालोंकी रचनाके भिन्न-भिन्न नाम आये हैं। यथा—कुन्तल [सिरके बाल]; दक्षिणावर्त्त– [दक्षिणकी ओर घूमे बाल], तरंग [घुँघराले], सिंहकेशर [गलेपर गिरे बाल], वरधर [वीचमेंसे बल खाये], जूड़ा और तसरा [रेशमी]।

गुप्तकालकी केश रचना मूर्तियों खिलौने और चित्रोंसे स्पष्ट होती है। अजन्ता और वाघके चित्रोंमें केशविन्यास बहुत ही सुन्दर दिया है। डाक्टर वासुदेवशरणजी अग्रवालने अपनी पुस्तक 'कला और संस्कृति' में घुँघराले बालोंका विचार निम्न प्रकार से किया है; यह विभाग राजघाटमें मिले खिलौनों पर आधारित है।

१. **शुद्ध घूँघर**—इसमें सीमन्त या माँगके दोनों ओर केवल वली भृत अलकोंके समानान्तर पंक्तियाँ सजी रहती हैं।

२. **छतरीदार घूँघर**—इसमें घूँघरोंकी पहिली पंक्ति ललाटके ऊपर आधे वृत्तमें घूमती हुई सिरके प्रान्त भागों तक चली जाती है; जो देखनेमें छतरी सी लगती है।

३. **चटुलेदार घूँघर**—इसमें सीमन्तको एक आभूषणसे सजाया जाता है।

---

१. चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः।
तद् वृन्दे कौशिकः कैश्यमलकाश्चूर्णकुन्तलाः॥
ते ललाटे भ्रमरकाः काकपक्षः शिखण्डकः।
कवरी केशवेशोऽथ धम्मिल्लः संयताः कचाः॥
शिखा चूड़ा केशपाशी व्रतिनस्तु सटा जटा।
वेणी प्रवेणी शीर्षण्य शिरस्यौ विशदे कचे॥
पाशपक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे॥
—अमरकोश० २।६।६५–६८

४. पटियादार घूँघर—इसमें पटिया और घूँघर मिले हुए रहते हैं। पहिले पटिया रहती है; फिर घूँघरीले बाल हो जाते हैं।

५. कुटिल पटिया—इसकी रचना मोरकी फहराती हुई पूँछके समान होती है [लीलामयूरबर्हभंग्या केशपाशं च विधाय—दशकुमारचरित २—शिखिनां बर्हभारेषु केशान्—मेघदूत]।

६. शुद्ध पटिया—सामान्य केशरचना जिसमें जूड़ा बाँधते हैं, इसे बनाकर जूड़ेमें फूल खोंस लिया जाता है [चूड़ापाशे नवकुरबकं—मेघदूत० उत्तरमेघ २]।

७. छत्तेदार केश—इसमें बाल माँगके दोनों ओर शहदके छत्तेके समान झँझरीदारसे जान पड़ते हैं, इसे अंग्रेजीमें Honey Comb Design कहते हैं [कालिदासने पारसीकोंके दाढ़ीदार सिरोंकी उपमा क्षौद्रपटलसे दी है, 'भल्लापवर्जितैस्तेषां शिरोभिश्मश्रुलैर्महीम्। तस्तार सरघव्याप्तैः सक्षौद्रपटलैरिव रघु० ४।६३]।
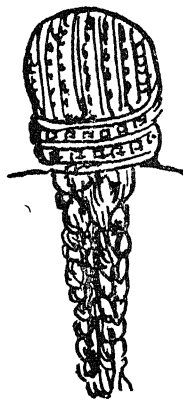
८. लटदार या लच्छेदार—बालोंकी सीधी लटें कन्धों तक झूलती रहती हैं।

९. ओढनीदार—बालोंकी कोई भी रचना की हो; परन्तु सिरपर एक ओढ़नी ढकी रहे, जिसमें सामनेके केश कुछ दीखते रहें।

१०. मौलि—बालोंका जूड़ा बाँधकर मालासे कस दिया जाता था, मौलिके भीतर भी फूलोंकी माला गूँथी जाती थी [मुक्तागुणोन्नद्धं अन्तर्गत स्रज मौलि—रघु १७।२३, पर्याक्षिपत्काचिदुदारबन्धं पूर्यावता पाण्डु मधूकदाम्ना—कुमार० ७।१४]।

डाक्टर मोतीचन्द्रजीने गुप्तकालकी केशरचनाको अपने लेखमें स्पष्ट किया है, यथा—

१. गुप्तकालमें लोग अपने बालोंकी टोपी [wig like] की तरह रखते थे, इसको चूर्ण कुन्तल कहते हैं। घुँघराले बालोंके बीचमें माँग निकाली जाती थी, और बाल पीछे लटकते रहते थे। दूसरे रूपमें बाल कन्धेपर पड़े रहते थे, जैसा कि शिखण्डक रूपमें होता है।

२. बालोंको बालवाली टोपीके समान रखकर, कुछ बालोंको मूर्द्धापर मुकुटके रूपमें लपेट लेना।

३. बाल इस तरह बाँधना कि घुँघराले बाल माथेपर आ जायें और घुँघराला भाग धागोंकी अण्टीके समान लिपटकर कन्धेपर पड़ा रहे। इसीमें दूसरा भेद था बालोंको खुला ही कन्धेपर पड़े रहने देना।

४. बालोंको घुँघराला या सादा ही वाम पार्श्वमें इकट्ठा करके गाँठ दे देना। इसके लिए 'शिखा' शब्द आता है।

५. कई बार छोटे बालोंको मोतियोंकी लड़ीसे चारों ओर घेरकर बाँधा जाता था।

६. पार्श्वोंमेंसे बालोंको पृथक् करके मध्यके बालोंको गुम्बदके रूपमें बाँधना और मोतियोंकी दो लड़ियोंसे इनको चारों ओरसे घेर देना।

७. बालोंको न तो घुँघराला करना और न इकट्ठा करना अपितु कटे हुए बालों [Bobbad] के समान ही छोड़ देना।

८. बालोंको वामपार्श्वमें अर्धगोलाकार रूपसे गुम्बजके ढँगपर बाँधना।

गुप्तकालमें बालोंकी रचनामें ही विशेषता नहीं थी, अपितु सौन्दर्यके लिए बालोंमें फूल लगाना तथा फूल और आभूषणोंसे अपनेको भी सजाना एक विशिष्टता थी; जैसा पद्मप्राभृतकम्में है—

वासन्ती कुन्दमिश्रैः कुरवककुसुमैः पूरितः केशहस्तो।
लग्नाशोकः शिखान्तः स्तनतटरचितः सिन्दुवारोपहारः॥
प्रत्यग्रैश्चूतपुष्पैः प्रचलकिसलयैः कल्पितः कर्णपूरः।
पुष्पव्यग्राग्रहस्ते वहसि सुवदने मूर्त्तिमन्तं वसन्तम्॥

स्त्रियोंके केश-विन्यासके निम्न रूप प्रायः मिलते थे—

१. बालोंमें कंघी करके बालोंको पीछे ले जाकर इनको इकट्ठा करके एक डोरीकी सहायतासे गोल, चपटा, ढीला जूड़ा बाँध दिया जाता था। इसमें बाल पूर्णतः बँधे नहीं रहते थे। इसके दूसरे रूपमें बालोंके चारों ओर एक पट्टी बाँध कर बालोंको स्थिर कर देते थे। बालोंके जूड़ेको स्थिर करनेके लिए मालाका भी उपयोग होता था अथवा कोई आभूषण या 'हेयरपिन' बरतते थे। जूड़ेका आकार बालोंकी लम्बाईके ऊपर निर्भर करता था। जूड़ेमें कमल या मल्लिकाका फूल लगाया जाता था

२. कंघी करके इनको दो जूड़ोंमें बाँधना; बालोंको सीधा पीछे ले जाना अथवा बीचसे बाँटकर पीछे ले जाना।

३. बीचमें माँग निकालकर बालोंको पीठपर घुँघराला करना और कुछ बाल दक्षिण कन्धेपर आने देना। बालोंको चारों ओर पट्टीसे बाँधना और पीठपर जूड़ा लटकाना।

४. बालोंका जूड़ा दक्षिण पार्श्व की ओर झुकता बाँधकर इसे जालमें ढाँपकर इसके किनारे वाम पार्श्वमें ढीले बाँध देना।

५. मूर्द्धापर जूड़ेके रूपमें बाँधना।

६. ढीला जूड़ा पीछे बाँधना तथा कुछ घुँघराली लटें पीठपर खुली छोड़ देनी।

७. खुले बाल पीठपर फैले रहें परन्तु इनको बीचमें एक डोरीसे बाँध दिया जाये।

८. रिबनसे लपेटकर फूलोंकी मालासे बाँध देना।

९. पीछे लटकने देकर इनको बालोंके बाँधनेकी डोरी से बाँध देना।

१०. सीधा ही पीठकी ओर कंघी करके छोड़ देना।

११. पीछेकी ओर कंघी करना, इनमें थोड़ा सा घुँघरालापन लाकर कुछ बालोंको वाम कन्धेपर पड़े रहने देना। सारी केश रचना को फूलोंकी माला आदिसे सजाना।

१२. बीचमें माँग निकाल कर कुछ बालोंको माथेपर दक्षिण पार्श्वमें लटकने देना। बालोंको पीछे करके इनको घुँघराले रूपमें कन्धेपर पड़े रहने देना।

१३. पीछेकी ओर कंघी करके, कुछ बालोंको पेंचके रूपमें चक्कर देते हुए, दक्षिण कंधेपर खुला छोड़ देना, सारे केश-विन्यासको फूलोंकी माला तथा पत्तोंसे अलंकृत करना।

१४. नीचेसे कटवाकर (Bobbed) नीचे ही डोरीकी सहायता से गूँथना।

१५. बीचसे माँग निकालना और छोटे बालोंको माथेपर तथा दक्षिण कंधेपर लटकने देना।

१६. कुछ बाल सीधे और कुछ घुँघराले पीठपर पड़े रहने देना।

१७. नीचेसे कटे हुए बालोंमें बीचसे माँग निकालना।

१८. कुछ घुँघराले बालों तथा दक्षिण पार्श्वमें माँग निकालकर वाम पार्श्वमें बालोंको जूड़ा नाशपाती या सेवके आकारमें बाँधना।

१९. घुँघराले बालोंको सूतकी अण्टीके समान ठीक बिठाकर पीठपर पेंचके समान बल खाते हुए छोड़ देना।

२०. मूर्धापर जटाके रूपमें बाँधना और बचे हुए बालोंको नीचेसे कटवाकर पीठपर पड़े रहने देना।

२१. बीचमेंसे माँग निकालकर बालोंको पार्श्वोंपर लटकते रहने देना।

२२. बीचमें से माँग निकालकर कुछ बाल वैसे ही छोड़ देना, वाम

पार्श्वके आधे बालोंका पीठपर जूड़ा बाँधना और दक्षिणके आधे बालों की वेणी गूँथना।

२३. बालोंको मूर्द्धा पर मौलीके रूपमें बाँधकर जालीसे चारों ओरसे घेर देना।

२४. बीचसे विभक्त करके, दक्षिण तरफ़के घुँघराले बाल खुले ही छातीपर आने देना, और लपेटे हुए बायें तरफ़के बाल कन्धेपर पड़े रहने देना।

इस प्रकार बालोंकी रचना अनेक प्रकारसे होती थी। केश भी प्रसाधनके मुख्य अंग हैं, अर्जुन ने बृहन्नलाके रूपमें अपनेको केशविन्यासमें ही चतुर कहा है [**करोमि वेणीषु च पुष्पपूरणं, न मे स्त्रियः कर्मणि कौशलाधिकाः—महा० विराट् ११।६**]। यह केशविन्यास प्राचीनकालमें विशेषत: गुप्तकालमें ही उन्नत था[1]। भारतवर्षके इतिहासमें यही समय वैभव तथा धन-धान्यसे पूर्ण होनेके कारण स्वर्णकालके नामसे स्मरण किया जाता है।

---

१. स्वर्ण युगकी झलक गुप्तकालमें बने अष्टांगसंग्रहमें मिलती है, यथा—मद्यपानके वर्णनमें; मद्यपान ऐश्वर्य, विलासिताका एक चिह्न है, विलासिताका आधार ऐश्वर्य—धनधान्य है; जो कि इस समय इस देश में दूर-दूरसे खिंचकर आ रहा था—

स्नातः प्रणम्य सुरविप्रगुरून्यथास्वं वृत्तिं विधाय च समस्तपरिग्रहस्य।
आपानभूमिमथ गन्धजलाभिषिक्तामाहारमण्डपसमीपगतां श्रयेत्॥
स्वास्तृतेऽथ शयने कमनीये मित्रभृत्यरमणीसमवेतः।
स्वं यशः कथक चारण सङ्घैरुद्धृतं निशमयन्नतिलोकम्॥
मणिकनकसमुत्थैरावरेयैर्विचित्रैः सजलविविधभक्तिक्षौमवस्त्रावृत्ताङ्गैः।
अपि मुनिजनचित्तक्षोभसंपादनीभिश्चकितहरिणलोलप्रेक्षणीभिःप्रियाभिः॥

——संग्रह० चि० अ० ६।

प्रसाधन के योग

●

प्रास्ताविकम्

प्रसाधन शरीरके सौन्दर्यके लिए किया जाता है। शरीरका सौन्दर्य कुछ स्वाभाविक होता है और कुछ प्रयत्न सिद्ध। इन्हीं प्रयत्नोंमें जो उपाय औषधसे सम्बन्ध रखते हैं और निर्दोष हैं, उनका यहाँ उल्लेख किया गया है।

ये औषध प्रायः ऐसी हैं जिनका प्रत्येक गृहस्थके यहाँ उपयोग होता है; बाह्य उपयोगके साथ अन्तः उपयोगमें भी आती हैं।

इसका मूल्य भी बहुत साधारण है। आधुनिक समयमें प्रसाधन सामग्री बहुत बढ़ गई, इसके लिए पाश्चात्य संसारका बहुत आभार है। परन्तु यह सारी सामग्री सामान्य व्यक्तिकी पहुँचसे दूरकी वस्तु है। एक गरीब भारतीय साबुनकी टिकियाको नहीं बरत सकता, परन्तु साबुनके कार्यको, चोकर, वृक्षकी छाल [आम, जामुन], मूँग या चनेकी दाल या छिलकेसे अथवा सज्जी मिट्टीसे पूरा कर लेता है। मुखके प्रसाधनके लिए हल्दी, कोदा चावल या सांवकका आटा, तेलकी खली, कुसुम्भके फूल, चन्दनका लेप बरतता है। इस दृष्टिसे ये उपाय आधुनिक प्रसाधन सामग्रीसे सर्वथा भिन्न हैं। आजकल जो प्रसाधन द्रव्य काममें आते हैं, वे रसायनिक हैं; इसका अन्तः उपयोग नहीं हो सकता। इसलिए निरन्तर लम्बे समय तक उपयोग करनेपर त्वचामें विवर्णता भी उत्पन्न हो सकती है। परन्तु प्राचीन प्रसाधनोंमें ऐसी बात नहीं। इनके लगातार उपयोग करनेसे त्वचामें कान्ति आती है; वर्ण निखरता है और शरीरमें ताज़गी भरती है।

इसी दृष्टिसे यहाँ पर ऐसे ही योग आयुर्वेद, कामसूत्रके ग्रन्थोंसे चुन-चुनकर एकत्रित किए हैं; जिनके उपयोग में सरलता रहे और किसी भी प्रकारकी हानि न हो। ये योग प्रायः अनुभूत और फलप्रद हैं।

प्रसाधनके उपयोगी नुस्खे

स्त्री शरीरके चार भाग उज्ज्वल होने चाहिये—१. नेत्र, २. दन्तपंक्ति, ३. नखावलि, ४. मुखकी कान्ति। चार भाग कृष्ण वर्ण होने चाहिये— १. केशपाश, २. पलकें, ३. भृकुटी, ४. आँखकी पुतलियाँ। चार भाग रक्त वर्ण होने चाहिये, १. मसूड़े; २. जिह्वा, ३. कपोल, ४. अधर। चार भाग गोल होने चाहिये—१. शिर, २. अँगुलियोंका अग्रभाग, ३. पैरकी एड़ी, ४. बाहुप्रदेश। चार भाग लम्बे होने चाहिये—१. नेत्र, २. शिरके केश, ३. पलकें, ४. अँगुलियाँ। चार भाग मोटे होने चाहिये—१. नितम्ब, २. ग्रीवा, ३. पिंडली, ४. जंघा। चार भाग विशाल होने चाहिये, यथा—१. मस्तक, २. नेत्र, ३. स्तन, ४. कन्धे।

स्त्रीका शृंगार सोलह प्रकारका है, यथा—१. उबटन, २. वस्त्र, ३. ललाटपर बिन्दी, ४. काजल, ५. कानमें कुण्डल, ५. नाकमें नथ, ७. हार, ८. बालोंकी चोटी, ९. फूलोंके गहने, १०. सिन्दूर, ११. शरीरपर चन्दन, केशरका अंगराग; १२. अंगिया, १३. पान, १४. कमरमें करधनी, १५. हाथमें कङ्कन, १६. पैरोंमें महावर।

वर्ण प्रसाधन

वर्णको निखारनेवाले उपाय और औषधियोंसे यह समझना कि वे कालेसे गोरा बना देती हैं, यह सरासर भूल है। ये वस्तुएँ वर्णको केवल उज्ज्वल कर देती हैं, चमका देती हैं। काले रंगपर भी मोम मलनेसे एक उज्ज्वलता और चमक आ जाती है। बस, यही कार्य इन औषधियों का है। शरीरका जो स्वाभाविक रंग है उसीमें चमक पैदा कर देती हैं, जिससे यह आकर्षक बन जाता है, क्योंकि पसन्दगी प्रत्येक मनुष्यकी

अपनी वस्तु है। [भिन्नरुचिर्हि लोकः—कालिदास]। इसलिए रंगकी चिन्ताको छोड़कर उसको उज्ज्वल करनेका प्रयत्न किया गया है। इस कार्यमें जिन द्रव्योंका उपयोग होता है, उनको 'वर्ण्य' कहते हैं, यथा—

चन्दन, तुंग [नागकेशर], पद्माख, खस, मुलैहठी, मंजीठ, सारिवा, पयस्या [सरालकन्द]; सिता [दूर्वा सफेद]; लता [लाल दूर्वा] ये दस औषधियाँ वर्ण को निखारती हैं।[1]

लोध, सावर लोध, पलाश, कुटन्नट, अशोक, फञ्जी, कट्फल, ऐलवालुक; शल्लकी, जिंगणी, कदम्ब, शाल, और केला ये औषधियाँ मेद और कफ को कम करती हैं, योनिदोषहर; स्तम्भक एवं वर्णको उज्वल करती हैं; और विषनाशक हैं।[2]

इन्हीं औषधियों के योग से भिन्न-भिन्न चूर्ण, उबटन, उत्सादन बनाये जाते हैं। जिनको शरीर पर मलते हैं; यथा—

१. चन्दन, खस, हरड़, लोध, कूठ, आमकी छाल, इनको पीसकर लेप करनेसे पसीनेकी दुर्गन्ध नष्ट होती है।

२. हरड़, नीमके पत्ते, कुष्ट, दाडिमी, सप्तपर्ण इनको पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध नष्ट होती है।

३. इमली, करंज बीजकी मज्जा, हरड़, विल्वकी मूल इनका लेप करनेसे दुर्गन्ध नष्ट होती है।

४. नागकेसर, अगरु, खस, बेरकी मज्जा, खस, चन्दन इनको पीस-कर शरीर पर लेप करे।

५. नीम, तिल, मुस्ता, लोध्र, अनारके फूल इनको शरीर पर मलने से दुर्गन्ध नष्ट होती है।

---

१. चरक० सूत्र० अ० ४।

२. सुश्रुत० सू० अ० ३५।

६. शिरीसके फूल, खस, लोध्र इनको अंगोंपर लेप करे। इससे पसीने की दुर्गन्ध नष्ट होती है। चरकमें इसके साथ नागकेसर भी मिलाना लिखा है।

• ७. तिल, सरसों; हल्दी, दारुहल्दी, कूठ इनका उबटन लगानेसे शरीरकी कान्ति बढ़ती है।

८. नील, अमलतास, अनारके फूल, शिरीषके फूल, लोध्र, हल्दी इनको मुखपर लगानेसे सौन्दर्यकी वृद्धि होती है।

९. काले तिल, काला जीरा, पीली सरसों, जीरा इनको दूधमें पीसकर लगानेसे मुखकी झांई मिटती है।

१०. लोध, वच, धनिया, गोरोचना इनको पीसकर लगाने से फुंसियाँ नष्ट होती हैं।

११. भूसी रहित जौका चूर्ण, मुलैहठी, श्वेत सरसों, लोध्रकी छाल इनका उबटन लगानेसे मुखकी कान्ति बढ़ती है।

१२. पके हुए वटपत्र, कचनार, मुलैहठी, प्रियंगु, कमल, सहदेवी, सफेद चन्दन, लाक्षा, केशर, लोध्र, इनको समान भाग लेकर जलमें पीसकर लेप करनेसे मुखका सौन्दर्य बढ़ता है; मुखकी कान्ति बढ़ती है।

१३. आम, अनार की छाल, शंख चूर्ण, इमली, करौंदा के बीज सबको पीसकर लेप करनेसे मुख की दुर्गन्ध नष्ट होती है।

१४. श्वेत चन्दन, केसर, कूठ, लोध, तगर, नेत्रबाला, इनको पीसकर शरीरपर मलनेसे दुर्गन्ध नष्ट होती है।

१५. लोध्र, खस, शिरीस की छाल, पञ्चाख इनका चूर्ण शरीर पर मलने से बदबू दूर होती है।

१६. तगर, कूठ, तालीशपत्रका लेप शरीरको सुन्दर करता है।

१७. पुनर्नवा, सहदेवी; अनन्तमूल, कुरण्टक, कमलपत्र इनसे तैल सिद्ध करके शरीरपर अभ्यंग करे।

१८. केसर, चन्दन, काला अगरुका लेप शीतकालमें करना चाहिये।

१९. चन्दन, कपूर, सुगन्धबाला इनका लेप ग्रीष्म ऋतुमें करना चाहिये।

२०. चन्दन, केसर, कस्तूरी इनका लेप वर्षाऋतु और शरद्‌ऋतुमें करना चाहिये।

२१. चन्दन, इलायची, कपूरकचरी, तेजपत्र, सहजन, हरड़, खस, मुस्ता, कूठ इनका लेप सुगन्ध देता है।

२२. तेजपत्र, चन्दन, खस, मुस्ता, कालाअगरु, कर्पूर, केसर, लोध्र, स्थौणेयक इनका लेप सुगन्ध देता है।

२३. सुगन्धराज लेप—कस्तूरी, नागकेसर, शैलेय, चन्दन, मुस्ता, श्रीवास, कर्पूर, जावित्री, स्थौणेयक, करंजमज्जा, इनको पानके रससे पीसकर लेप करना चाहिये।

२४. कस्तूरीदल सुगन्ध—मुस्ता एक भाग, हरड़ चार भाग, कूठ, स्थौणेयक, कर्पूर एक एक भाग, शैलेय रस पाँच भाग, नख नौ भाग, इनको मिलाने से यह सुख सुगन्ध बनती है[1]।

२५. सौरभगर्भ लेप—नख, हरड़, छोटी हरड़, मुस्ता, जटामांसी, सौंफ, करंजमज्जा, ये सब समान भाग, कर्पूर, अगरु, कस्तूरी, जावित्री, स्थौणेयक प्रत्येक तीन-तीन भाग, मुस्ता एक भाग मिलाये। यह लेप अति मनोहर और सुगन्धि देता है।

२६. मसूर की दालको दूध के साथ पीसकर घीमें मिलाकर सात दिन लेप करनेसे मुख कमल के समान हो जाता है।

---

१. [क] अनंगरंग सप्तमस्थल।

[ख] शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रदेहः।
पत्राम्बुलोध्राभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः॥
—चरक सू० ३।२९

• २७. मक्खन, गुड़, मधु और बेर की मज्जा इनको मिलाकर मुख पर लेप करना चाहिये। वरुणकी छालको दूधके साथ पीसकर लेप करना उत्तम है।

• २८. जायफलको घिसकर लगानेसे अथवा सायंकालमें सरसों के तैलकी मालिश करनेसे मुखकी कान्ति बढ़ती है।

२६. बरगदके पत्ते [पीले पत्ते], चमेलीपत्र, लाल चन्दन, कूठ; कालीयक, और लोध्र इनको पीसकर दूधमें मिलाकर लेप करने से मुखकी झाँई नष्ट होती है।

३०. कालीयक, नीलकमल, कूठ, दहीकी मलाई, बेरकी गुठली, प्रियंगु इनको एक साथ पीसकर प्रलेप करनेसे मुखकी कान्ति बढ़ती है।

३१. श्वेत सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, गेरू, घृत और बकरीका दूध इनको मिलाकर लेप करनेसे मुखकी कान्ति उज्ज्वल होती है।

३२. शरपुंखा, नीलकमलपत्र, कूठ, चन्दन, खश, इनको पीसकर बासी दहीमें मिलाकर मुखपर लगानेसे झाँई अथवा कालिमा दूर होती है।

३३. द्विहरिद्रादि लेप—हल्दी, दारुहल्दी, मुलैहठी, कालीयक, रक्तचन्दन, पुण्डरीक, मंजीठ, कमलपुष्प, पद्माख, केशर, कैथ, तिन्दुक, पिलखन, और बरगदके पके हुए पत्ते इनको दूधके साथ पीसकर लेप करे।

द्विहरिद्रादि तैल—इन उपर्युक्त द्रव्योंका कल्क, एवं कल्कसे चार गुणा दूध डालकर तैलका [दूधका चौथाई तैल] पाक करना चाहिये।

ये लेप एवं तैल मुखकी नीलिमा, कालिमा, झाँई, तिल आदि को नष्ट करते हैं। इस तैलकी सारे शरीरपर भी मालिश कर सकते हैं।

३४. पीला-पका बरगद का पत्ता, गन्ध प्रियंगु [घेऊँला], मुलैहठी, कमलपुष्प, लोध्र, केसर और लाख इनको जलमें पीसकर मुखपर लगाने से मुखका लावण्य निखरता है।

३५. अरणी वृक्षकी छालको बकरीके दूधमें पीसकर लगानेसे कालिमा नष्ट होती है।

३६. भैंसके दूधमें अगस्तियाके फूलों का चूर्ण मिलाकर गरम करे। इससे दही बनाकर निकाले मक्खनको शरीरपर मलने से शरीरका फटना, मुखकी रूक्षता दूर होती है।

३७. भैंसके दूधसे निकाला मक्खन, खली, गोमूत्र, सैन्धा नमक, यवक्षार इनको एक साथ आगपर धीरे-धीरे गरम करे। इसको शरीरपर लगानेसे शरीरका फटना दूर होता है।

३८. मक्खन, वच, उड़द्का आटा, सक्तु [सत्तू], कमलपत्र, सौंफ इनको स्त्रियोंके शरीरपर मलना चाहिये। इससे रंग उज्वल होता है तथा शरीरमें मोटापा आता है।

३९. वच, लोध, खस, घी, राल, दूध, बरगदके पीले पत्ते, हल्दी इन सबको साथमें पीसकर मुखपर लगाये। इसके लगानेसे मुख कमलके समान हो जाता है।

४०. अडूसेके पत्तोंका रस, शंखका चूर्ण [शंख-भस्म], इनको या विल्वपत्रका रस लगानेसे शरीरकी दुर्गन्ध नष्ट होती है।

४१. हल्दी, दारु हल्दी, दोनोंको दूधमें पीसकर लगानेसे रंग साफ होता है, पानीमें पीसकर लगानेसे शरीरकी दुर्गन्धि दूर होती है[1]।

तैल

शरीरपर अभ्यंग करनेके लिए कई सुगन्धित तैल हैं, इनके मलनेसे पसीनेकी दुर्गन्ध नष्ट होती है, त्वचामें कोमलता एवं चमक आती है।

१. **कनक तैल**—तिलतैल ½ सेर, क्वाथार्थ-मुलैहठी १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, कल्क-द्रव्य—प्रियंगु, मंजीठ, लाल चन्दन; कमल, नागकेशर प्रत्येक २ तोला, पाकके लिए जल २ सेर, इनसे तैल सिद्ध करना चाहिये।

---

१. मुखपर लेप अँगुलीका [एक पर्वका] चौथाई, एक तिहाई या आधा मोटा करना चाहिए। आधा अंगुल लेप उत्तम, एक तिहाई मध्यम और एक चौथाई कनिष्ठ होता है।

—गदनिग्रह-दूसरा भाग; क्षुद्ररोगाधिकार

२. **मंजिष्ठाद्य तैल**—तिलतैल १/२ सेर, बकरीका दूध १ सेर, कल्क-द्रव्य—मजीठ, मुलैहठी, लाख, बिजौरे की छाल, प्रत्येक २ तोला। मृदु अग्निसे पाक करें।

३. **कुंकुमाद्य तैल** (१) तिलतैल १/२ सेर, बकरीका दूध १ सेर, कल्कद्रव्य—केसर, चन्दन, लाख, मजीठ, प्रत्येक २ तोला। मृदु अग्निसे पाक करना चाहिये।

४. **कुंकुमाद्य तैल** (२)—तिलतैल १/२ सेर, क्राथाके लिये लालचन्दन, लाख, मंजीठ, मुलैहठी, कालीयक काष्ठ, उशीर, पद्माख, नीलोत्पल, बरगदके कोपल, पिलखनके शुंग, कमलकेशर और दशमूल प्रत्येक ४ तोला, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, कल्कार्थ—मंजीठ, मुलैहठी, लाक्षा, लाल चन्दन, प्रत्येक २ तोला। बकरीका दूध १ सेर मिलाकर तेल सिद्ध करें। तैल सिद्ध होनेपर इसमें केशर ८ तोला मिलायें। इसके मलनेसे कालिमा दूर होती है।

५.**कुंकुमाद्य तैल** (३)—तिल तैल ४ सेर; लाक्षाका क्वाथ ८ सेर; कल्कार्थ-केशर (तैल सिद्ध होनेपर पीछे मिलाना चाहिए); ढाकके फूल, लाक्षा; मजीठ, लाल चन्दन, कालीयक, पद्माख, खस, विजौरकी जड़, बिजौरकी केशर, कुसुम्भ पुष्प, मुलैहठी, प्रियंगु, मेंहदी या (वेलाका फूल), हल्दी, दारुहल्दी, गोरोचना, कमल, नीलकमल, मैनसिला, काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, प्रत्येक दो तोला मिलाकर पाक करना चाहिए।

६. **वर्णकघृत**—मजीठ, मुलैहठी, चन्दन, लाख, केशर प्रत्येक एक-एक तोला, तिल तैल ३२ तोला और बकरीका दूध ६४ तोला लेकर इसमें तैल पकायें। इस तैल को प्रतिदिन लगानेमें सात दिन में ही सौन्दर्य निखर आता है।

७. **वर्णकघृत**—घृत ४ सेर, कल्कार्थ-मुलैहठी, लाल चन्दन, कंगु, श्वेत सरसों, पद्माख, कालीयक, हल्दी, लोध, मिलित १ सेर, कुछ पानी मिला-

कर घृतका पाक करें। फिर घीको छानकर इसमें केशर आधा सेर, मोम आधा सेर मिलाकर फिर पाक करें। जब जल समाप्त हो जाये तब इस पात्रको शीतल जलके पात्रमें रखकर उतार लें। इस घीका लेप करनेसे मुख निष्कलङ्क चन्द्रमाके समान होता है; सौन्दर्य बढ़ता है।

८. **लाक्षादि तैल**—लाख, लोध, हल्दी, दारुहल्दी, मैनसिल, हरताल, कूठ, नागकेसर, गेरु, कमीला, मंजीठ, वच, गोपीचन्दन, चन्दन, गोरोचना, स्रोतांजन, अमलतासकी छाल, बरगदका पीला पत्र, कालीयक, पद्माख, कमलका केशर, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, पारद, काकोल्यादि गण (सुश्रुत० मे सू० अ० ३८।३५-३६), इनको दूधमें पीसकर मेद, मज्जा, मोम, गायका घी, दूध, बरगद आदि क्षीरि वृक्षोंका क्वाथ मिलाकर पाक करे। इस घीका मुखपर अभ्यंग करना चाहिये। इससे मुख की झाँई मिटती हैं, मुख का रंग साफ़ होता है।

. **असन विल्वादि तैल**—असन, विल्व की छाल, आँवला और बला, इन तीनों का चार गुणे पानी में क्वाथ करना चाहिए। इस क्वाथ में चतुर्थांश तिल का तैल और मुलहैठी, सोंठ और त्रिफला का कल्क [तैलसे चौथाई] मिलाकर तैल पाक करे। इस सिद्ध तैलमें थोड़ा दूध मिलाकर फिरसे तैल पकायें। यह तैल शरीर पर लगाना उत्तम है। दक्षिण भारत में यह तैल बहुत बरता जाता है।

बालोंके लिए तैल

नीले-काले, घने, लम्बे, घुँघराले बाल प्रशस्त माने जाते हैं। इनको सुरक्षित रखने के लिए धूम और तैल का उपयोग होता है, यथा—

१. विल्वपत्र, मरुवा, अशोकके फूल, केवड़ेके फूल इनको तैलमें डालकर धूप में रख देना चाहिए। जब फूल सूख जायें तब इन फूलों को निकाल देना चाहिए। यह तैल बालों के लिए उत्तम है।

२. इलायची, खस, नख, जटामांसी, कर्पूर और तेजपत्र, इनका चूर्ण स्नानसे पूर्व बालोंमें मलना चाहिये।

३. **महाभृंगराज तैल**—तिल तैल ४ सेर, भांगरेका रस १६ सेर, मंजीठ, पद्माख, लोध, लालचन्दन, गेरू, बला, हल्दी, दारुहल्दी, नागकेसर, प्रियंगु, मुलैहठी, प्रपौण्डरीक और सारिवा, प्रत्येक १ पल (चार तोला) इन सबको दूधमें पीसकर पाक करे।

४. **भृंगराजतैल**—तिल तैल ४ सेर, भाँगरेका रस १६ सेर, कल्कार्थ-त्रिफला, नीलकमल, अनन्तमूल, मण्डूर, आमकी गुठलीकी मज्जा; मिलित १ सेर, इनका यथाविधि पाक करना चाहिये।

५. **मालत्याद्य तैल**—तिल तैल १ सेर, कल्कार्थ-मालतीपत्र; कनेरकी जड़, चितामूल, करञ्ज बीज की मज्जा—प्रत्येक ४ तोला, जल ४ सेर, इनको मिलाकर तैल पाक करना चाहिये।

६. **नीलनी तैल**—नीलके पत्ते, भांगरा, अर्जुनकी छाल, मैनफल, काला लोह चूर्ण, असन और झिण्टीके फूल, हरड़, बहेड़ा, आँवला इन सबका चूर्ण करके, इनको मिलाये। इन सबके बराबर कमलिनीका कीचड़ लेकर, उसमें इन सबको मथकर ढक्कनदार लोहेके घड़ेमें पन्द्रह दिन सुरक्षित रख देना चाहिये। पन्द्रह दिनके बाद इसमें त्रिफलाका क्वाथ और भाँगरेका स्वरस मिलाकर तैल सिद्ध करना चाहिये। जब तैल पकनेके नज़दीक हो तो इसमें बगलेका पंख डालकर परीक्षा करे। जब पंख काला हो जाये तब इसको पका जानना चाहिये।

अंगराग-जंघा आदि अंगोंमें बराबर रगड़ लगनेमें त्वचाका रंग बदल जाता है, इसके लिए अंगरागका उपयोग होता था, यथा—

> हरीतकीचूर्णमरिष्टपत्रं चूतत्वचं दाडिमपुष्पवृन्तम्।
> पत्रं च दद्यात् मदयन्तिकायाः लेपोऽङ्गरागो नरदेव योग्यः॥
> —सुश्रुत० चि० अ० २५।४३

हरड़का चूर्ण, नीमके पत्ते, आमकी छाल, अनारकी पुष्पकली, मेंहदी के पत्ते इनका लेप राजाओंके लिए है।

अधिक पसीना आनेपर—हरड़का बारीक चूर्ण लेकर उसका पानीमें उबटन बना शरीरपर मलकर स्नान करना चाहिये।

शरीरकी दुर्गन्धके लिए—१—शिरीष छाल, खस, नागकेसर, लोध इनका उबटन पसीनेकी दुर्गन्धको नष्ट करता है।

२. तेजपत्र, मुस्ता, लोध, खस, चन्दन इनका लेप शरीरमेंसे आने-वाली दुर्गन्धको दूर करता है।

उष्णलेप—शिलारस, इलायची बड़ी, अगरु, कुष्ठ, चण्डा, तगर, दालचीनी, देवदारु और रास्ना इनका लेप शीतको दूर करता है।

शीतल लेप—शैवाल, कमल, नील कमल, बेंत, नागकेशर, प्रपौण्ड-रीक, खस, लोध्र, प्रियंगु, कालेयक और चन्दन इनको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करना चाहिये।

बालोंके लिए लेप—१. मुलैहठी, आँवलाका चूर्ण मधुमें मिलाकर बालोंकी जड़में [बाल मुंडवाकर] लेप करना चाहिए। २. तिल और आँवलेको मधु या तैलमें पीसकर लेप करना चाहिये। ३. तुत्थ [ताम्र-पात्रमें रक्खा दही या जङ्गाल], आम और जामुनकी गुठली, कासीस, शर्करा इनको पीसकर लेप करना चाहिये। ४. झिण्टीपुष्प, नीलपुष्प, हरड़, बहेड़ा, आँवला, भाँगरा इनको काली बकरीके मूत्रसे पीसकर लेप करना चाहिये। इनसे बाल काले, घने उत्पन्न होते हैं। ५. त्रिफला [हरड़, बहेड़ा, आँवला], गोखरू और लोहचूर्णसे बनाया लेप बालोंको काला करता है।—पद्मप्राभृतकम्।

पैरोंके लिए लेप—पैरोंको गरम पानीसे सायंकालमें धोकर इनपर सरसोंका तेल या मोम और तिलका तेल मिलाकर मलना चाहिये। पैरके तलुए कोमल-मुलायम रहने आवश्यक हैं। इसकी लालिमाके लिए मेंहदी या लाक्षारस [आलक्तक] लगाया जाता है। यदि नियमपूर्वक सोनेसे पूर्व पैरोंको गरम पानीसे धोकर-पूँछकर तैल लगा दिया जाये तो

पैरोंके तलुए नरम और सुन्दर रहते हैं। पैरों के लिए तैलका अभ्यंग उपयोगी और आवश्यक है।

रातमें मसूर, जौ, हल्दीको पीसकर पैरोंपर लगाकर प्रातः गरम पानीसे पैरोंको धोना चाहिये।

सौन्दर्य और प्रसाधन ये दोनों वस्तुएँ स्वस्थ शरीरके साथ ही अच्छी लगती हैं। शरीरको स्वस्थ रखनेके लिए ही अत्रिपुत्रने अंजन, अभ्यंग, ताम्बूल [पान] आदि प्रसाधन वस्तुओंकी आवश्यकता बताई है। इस-लिए सौन्दर्य और प्रसाधन दोनों एक दूसरेके पूरक हैं। प्राचीन भारतमें इनका उपयोग इसी रूपमें था। स्वास्थ्य या आरोग्यका साधन प्रसाधन है। प्रसाधनसे सौन्दर्यमें वृद्धि होती है। इस प्रकारसे स्वास्थ्य-प्रसाधन और सौन्दर्य ये तीनों नामसे भिन्न होनेपर भी एक शृङ्खलाकी तीन कड़ियाँ हैं, जिसको प्राचीन ऋषियों और कवियोंने सही रूपसे पहिचाना था।